ओ३म्

वेदमर्य्यादाके पूर्वार्द्ध की विषयसूची ।

प्रथम अध्याय की सूची ।

द्वितीय अध्याय की सूची ।

विषय ।

तृतीय अध्याय की सूची ।

चतुर्थ अध्याय की सूची ।

ओ३म् ।

अथ वेदमर्य्यादा ।

दोहा ।

ऋग् यजु साम अथर्वका, वेदनाम सचजान ।
कहत वेद जो ज्ञानको, समझत नहीं अजान ॥

वेदमर्य्यादा सदासे यही चली आई है कि इनमें न कोई त्रुटि है, और न कोई अतिशय अर्थात् अधिकता इनमें सम्पादन की जा सकती है ॥

ऋग्, यजु, साम, अथर्वरूप एक ऐसी पूर्ण वाणी है, कि जिसका धाता, जिसका निर्माता एक मात्र ईश्वर सेबिना कोई अन्य नहीं ॥ इसी अभिप्रायसे यह लिखा है कि अनादिनिधना वाक् स्वयं उत्सृष्टा स्वयंभुवा" कि आदअन्तसे रहित इस वाणीको स्वयं परमेश्वरने रचा है । ईश्वरके ज्ञानरूप होनेसे, इस वाणी को भी आदिअन्तसे रहित कहा गया है ।

यह सब वेदवादियोंका सिद्धान्त है कि, यह वाणी नित्य और ईश्वरीय है ॥ कई एक लोग इसमें यह आशङ्का करते हैं कि, ऋग्वेद सबसे प्रथम बना, उसीके मन्त्र बहुधा अन्य वेदोंमें पाए जाते हैं, इस शङ्काका कारण हमारे विचारमें वेदोंका अनभ्यास है। हेतु यह कि, जब चारों वेदोंमें ऐसे मन्त्र पाए जाते हैं, जिनसे ऋग्वेदका सबसे प्रथम बनना सर्वथा युक्तिशून्य मालूम होता है तो फिर उक्त आशङ्का को अवकाश कहां ?

देखो सामवेद पूर्वार्चिक अध्याय ४ खण्ड २ मन्त्र १० "ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्म्माणि, कृण्वते" इस वेदमन्त्रमें साम और ऋग्वेद दोनोंको यज्ञके साधन कहा है। हां यहां यह आशङ्का अवश्य होगी कि, सामवेदमें ऋग्वेदका नाम आजाना इस बात को सिद्ध नहीं करता कि साम ऋग्वेदके समान पुराना है। किन्तु सिद्ध यह होता है, कि ऋग्वेद पुराना था इस लिए उस का नाम सामवेदमें आगया॥

इसका उत्तर यह है कि "तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" ऋ ८।४।१८।६ यह तो ऋग्वेदका मन्त्र है, इसमें भी सामवेद का नाम आया है ; इससे स्पष्ट सिद्ध है कि ऋग्वेदके समान सामवेद भी पुराना और स्वतन्त्र सत्ता रखता है किसी अंशमें भी ऋग्वेदके अधीन नहीं।

जब लोग बहुतसे मन्त्रोंको सामवेदमें भी वैसाही पाते हैं जैसेकि ऋग्वेदमें हैं, इस कारणसे वे लोग ऐसी भूलकर बैठते हैं कि यह सब मन्त्र ऋग्वेदसेही सामवेदमें उद्धृत किए गए हैं।

हमारे विचार में ऐसा मानना व लिखना सर्वथा निर्मूल और मिथ्या हैं। हेतु यह है कि वेदनिर्माता परमात्मा किसी की नकल नहीं करता और नाही उसके कवित्वका क्षेत्र सङ्कुचित है कि जिससे गिनेमिने मन्त्रोंको इधरसे उधर उद्धृत करता रहे। किन्तु वह सर्वज्ञ सर्वोपरि, मनस्वी और कवि हैं, जिसके कवित्वमें गन्धमात्र भी न्यूनता नहीं। इस लिये न ऋग्वेदके मन्त्र साममें उद्धृत किये गये, और न सामसे ऋग्वेदमें डाले गए, किन्तु आवश्यकता अनुसार जहां के तहां परमात्माने रखे हैं।

इस विषयमें प्रथम तर्क यह है कि जो लोग ईश्वरकी भूल निकालते हुए यह कहते हैं कि, यह दुबारा भूलसे लिखे गए हैं। उनसे यह पूछना चाहिए कि, तुमतो समझसोचकर लिखते हो फिर

तुम एकही वेदमन्त्र वा उपनिषदोंके वाक्योंसे उन्ही मन्त्रों की पुनरुक्ति वा उपनिषद् वाक्योंकी पुनरुक्तिसे सैंकड़ों पृष्ठ क्यों काले करते हो, उनको एक स्थानमें लिखकर ही वस क्यों नहीं कर देते ?

ऐसा पूछने पर वे लोग उत्तर यह देते हैं कि जहां जहां हम, इन मन्त्र तथा वाक्यों को लिखते हैं, वहा सर्वत्र उनकी आवश्यकता है। वस तव इसी कथनसे उत्तर निकल आया कि ईश्वरने भी ऐसा ही किया।

यदि यह कहा जाय कि, हम तो मनुष्य होनेसे ऐसा कर वैठते हैं कि एक अर्थ पर ज़ोर देनेके लिये एकही वाक्य वा वेदमन्त्रको अनेक स्थानोंमें लिखते हैं फिर ईश्वर ऐसा क्यों करता है ? इसका उत्तर यह हैं कि, क्या ईश्रको एक अर्थके वार वार दृढ करने की आवश्यकता नहीं ? जव उपनिषद् और ब्राह्मणग्रन्थोंमे भी कई एक ब्राह्मण, कई एक स्थानोपर ज्यों के त्यों आए हैं, एवं कई एक श्लोक भी वार वार आए हैं, तो फिर ईश्वरीय पुस्तक इस दृढतासे खाली क्यों रहे ?

अधिक क्या किसीभी भाषामे आजतक कोई ऐसा पुस्तक निर्माण नहीं किया गया, जिसमें एक अर्थको वार वार दृढ न किया गया हो।

यदि यह कहा जाय कि मनुष्यों की वनाई हुई पुस्तकोंका दृष्टान्त दे कर इस वात को क्यों मराडन किया जाता है : क्योंकि मनुष्योंका ईश्वरसे क्या मुकावला ? तो उत्तर यह है, कि तुम भी तो मनुष्यों की वुद्धि को प्रिय लगता हुआ देखकर यह कहते हो कि ईश्वरीय पुस्तकमें कोई वाक्य दुवारा नहीं आना चाहिये। यहभी तो मनुष्य की वुद्धिका भाव है।

मुख्यप्रसङ्ग यह है कि सामवेदकी स्वतन्त्र सत्ता है। इसके

रचयिताने मन्त्र किसी अन्य वेदसे उद्धृत नहीं किए, किन्तु जितने मन्त्र इसमें वर्त्तमान समयमें मिलते हैं, वे सब इसके अपने हैं, किसीसे उधार वा ऋण नहीं लिये। इस विषयमें हम ऋग्वेदका मन्त्र प्रमाण दे आए हैं, कि ऋग्वेदमें सामवेदका नाम है, सामवेद सनातन समयसे ऐसाही चला आता है। जैसा आजकल उपलब्ध होता है। यह एकही मन्त्र नहीं, ऋग्वेदमें ऐसे अनेक मन्त्र पाए जाते हैं, जिनमें सामवेदका नाम आता है। उदाहरण के लिये हम कई एक वाक्य यहां उधृत करते हैं।

"ऋचः सामानि यज्ञिरे ऋ ८।४।१८।६. ऋक्सामभ्याम् १०।८५।११। सामगा इव।१०।१०७।६।" इससे सिद्ध है कि ऋग्के समयमें सामवेद था। इस लिये ऋग्में सामका नाम पाया जाता है। इन वाक्योंसे स्पष्ट सिद्ध है कि सामवेद की ऋग्वेदके समान स्वतन्त्र सत्ता है।

२। दूसरी युक्ति यह है कि यदि सामवेदके वास्तवमें ७० मन्त्रही होते अन्य सब ऋग्वेदके होते तो किसी न किसी पुरुषके हाथ ७० मन्त्रका सामवेद अवश्य लगता। जितनी दुनियांभर में आजतक लायब्रेरीयें पाई जाती हैं उनमें एक भी ऐसी नहीं जिसमें ७० मन्त्र का सामवेद मिलता हो और न कोई ऐसा वेदपाठी ब्राह्मण पाया जाता है कि जिसके ७० मन्त्र वाला सामवेद कण्ठ हो।

३। जिन लोगोंने पैगम्बर बनेके लिये वा व्यासकी पदवी पानेके लिये, आजकल सामवेदको छांटकर उसके असली सत्तर मन्त्रही माने है कि केवल ७० इतने ही मन्त्र सामवेद के नए हैं और सब ऋग्वेदमें आचुके; परन्तु इन्हीके लेखोंके पढ़नेसे यह पता मिलता है कि सामवेदमें सैंकड़ों मन्त्र ऐसे है जो ऋग्वेद में नहीं आए प्रमाणके लिये देखो ५ मन्त्र जिनको वादीने परिशिष्ट माना है वह मूल सामवेदके हैं, और न किसी अन्य वेदमें पाए जाते हैं।

यदि किसी संशयात्मा को इसमें सन्देह हो वा वर्त्तमान समयमें व्यास बननेवाली व्यक्तियोंका सहायक हो तो वह (पुस्तकशाला) राज लाइब्रेरी अलवरमें जाकर देखले, कि जिसको अवैदिक लोग परिशिष्ट कहते हैं वे सामवेदके अभ्यन्तर हैं वाहर नही।

एवं ५५ मन्त्र अरण्यक अध्यायके और १० महानाम्नी आर्चिकके यह सब मिल कर १४० हुए। फिर वह किस मुखसे कहते हैं कि सामवेदके केवल ७० मन्त्र हैं।

४। एवं सैंकड़ो मन्त्र सामवेदमें ऐसे हैं जो ऋग्वेदमें सर्वाङ्गतया नहीं आए अर्थात् वाक्य वा पद भेदसे वह सर्वथा नयेहैं जैसे कि पुरुष-सूक्त सामवेद और ऋग्वेदमें भिन्न २ प्रकारसे हे इस लिये इस को पुनरुक्त कदापि नहीं कहा जाता क्योंकि आकार और अर्थ-भेदसे यह प्रकरण सर्वथा भिन्न है। ऋग्वेदमें "सहस्र शीर्षा पुरुषः म० १० । ६ । सू ९०" में यह ईश्वरको प्रतिपादन करता हे और सामवेदमें इससे प्रथम छः ऋतुयोंका वर्णन आचुका हैं। इस प्रकरणमे यह (प्रजापति) कालका वर्णन करता है वह दस सूक्ष्म और दस स्थूल भूतोंको अतिक्रमण करता है अर्थात् भूत परिणामि नित्य हैं और काल एक रस नित्य है इस लिये दस भूतोंसे विशेषरूपसे स्थिर हैं। अस्तु।

यदि एक अर्थको वर्णन करनेवाला भी पुरुषसूक्त माना जाय, तब भी पुनः २ दृढताके लिये आया हैं अर्थात् पुरुषके स्वरूपको दृढता पूर्वक बोधन किया गया हे। इस लिये दृढता रूप अन्यार्थके बोधन करनेके कारण ककारादि वर्णोंके समान नया है, जिस प्रकार काम्यकर्म १ कमनीय २ कर्दम ३ कर्कश ४ कर्क ५ कठिन ६ इत्यादि शब्दोंमें ककार पुनरुक्त नहीं होता किन्तु सर्वत्र वाक्यभेदसे भिन्नार्थ रखता है। एवं पुरुषसूक्तके मन्त्र भी वाक्यभेदसे पुनरुक्त नहीं।

प्रमाणके लिये देखो "सहस्र शीर्षा पुरुषः" के अर्थ यह हैं कि

पुरुष सहस्रों प्रकार की बुद्धिवाला अर्थात् अनन्त ज्ञानवाला है। और अथर्वमें "सहस्र बाहुः पुरुषः" यह मन्त्र है। इसके अर्थ यह होते हैं कि अनन्त बलवाला पुरुष है। बल और बुद्धिका भेद हस्ति और चिउंटीके समान मूर्खसे मूर्खकी बुद्धिमें भी स्पष्ट आजाता है। फिर कैसे कहा जाता है कि वेदमें उन्हीं मन्त्रोंके बार २ आनेसे पुनरुक्ती है?

यदि कुछ न कुछ वही भाग आजानेसे मन्त्रका नयापन नष्ट समझा जाय, तो सैंकड़ों मन्त्र ऐसे हैं जिनका पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध एक जैसा है वह भी निकालने पड़ेंगे, अर्थात् उनका अङ्ग भङ्ग करके आधा भाग नया रख लिया जायगा और पुराना निकाल दिया जायगा। व यों कहो कि उसमेंसे आधा उड़ा कर वेद शुद्ध कर दिया जायगा। इस प्रकार करनेसे कुछ न कुछ भाग मुकर्रर करना पड़ेगा, कि कितना भाग नया आनेसे मन्त्र नयासमझा जाय, इस भवरमें पड़नेसे "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु यजु ३४—१" इत्यादि वाक्य और "योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तम्वो जम्भे दध्मः अथर्व ३-२७-१" इत्यादि वाक्यों की भी इयत्ता स्थिर करनी पड़ेगी, कि इनसे अधिक यदि वार २ आए तो पुनरुक्त माना जायगा तो फिर कितने अक्षर प्रमाण किये जायें जिनसे मन्त्र नया समझा जाय।

यदि यह कहा जाय कि आकार भेदसे मन्त्र नया समझा जायगा तो फिर क्या ऋग्वेदमें सहस्र शीर्षा पुरुषः" और अथर्व वेदमें सहस्र बाहुः पुरुषः का १६-१-६मे आकार भेद नहीं? यदि ऐसा है फिर साम-वेदमें "वृत्वा" यजुर्वेदमें स्पृत्वा भी आकार भेद है। फिर पूर्णपुरुषकी बलरूप भुजाओंको काटकर केवल सिर ही रखा जाय यह कौनसी बुद्धिमत्ता है?

तात्पर्य्य यह निकला कि इस प्रकार पुरुषसूक्तके मन्त्र भी नए हैं। जो प्रकार वा आकार भेदसे भिन्न हैं एवं सैकडों मन्त्र साम-

वेदमें ऐसे हैं जिनका अर्थ तथा पाठका गन्ध भी ऋग्वेदमें नहीं फिर जिन लोगोंने साहस करके यह लिख दिया है कि सामवेदमें केवल ७० ही मन्त्र हैं उन्होंने अत्यन्त भूल की है।

"अग्ने आयाहि वीतये" से लेकर "स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु" यहां तक सामवेदका आद अन्त है। गणनामें सब मन्त्र १८७३ हैं।

जिन लोगोंका यह विचार है कि, वेदों की संहितायोंमें भी पाठ-भेद है, जैसे कि गायत्री का पाठ

वास्तवरूप { तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ १॥

विकृतरूप { तत्सवितुर्वरेणियोम्। भर्गो देवस्य धीमाही।
धियो यो नः प्रचोऽ १२ऽ१२, हुम्, आ,
२१११दायो, आ ४४, १।

यह लिखकर संहितायों में पाठभेदका उदाहरण दिया है।

ऐसा लिखने व कहनेवालोंने शाखा और संहिताके भेदको सर्वथा नहीं समझा, वा यों कहो कि तत्त्वनिर्णयके लिये कभी किसी पुस्तकालयमें हस्तलिखित वेदपुस्तकके दर्शन भी नहीं किये। क्योंकि यह पाठ, ऊह गानके समान शाखाका है, संहिताका नहीं। संहितायोंके सब पुस्तकोंमें गायत्रीका समान रूप पाया जाता है, अर्थात् "तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" इसमें एक मात्रा का भी भेद नहीं। जिनका यह तात्पर्य है कि संहितायोंमें भी आपसमें भेद है। फिर उनको क्या अधिकार है कि

वे यह कहेंकि यह विकृत पाठ है और अइ अविकृत हैं अर्थात् असली और नकली जब दोनों प्रकार के पाठ उनके कथनानुसार संहिता-योंमें ही मिलते है तो फिर विकृत और अविकृत कैसे पहचाना जायगा ?

वास्तवमें बात यह है कि जिन लोगोंको ईश्वरीय वाक्य पर विश्वास नहीं, और किसी लोक लालसा के लिये किसी प्रकार वेदोंमें उलट फेर करके, अपनी प्रसिद्धि करना चाहते हैं। वे भले ही कहें कि संहितायोंमें पाठभेद व मिलावट है। पर वास्तमें वेद संहिता-योंमें अक्षरमात्र का भी भेद नहीं और ना ही किसी अन्य ग्रन्थका पाठ संहितायोंमें आज तक मिला, वा मिलाया जा सकता है।

१। कारण यह कि बहुतसे पण्डित लोग संहितायोंको कण्ठ-करते चले आए हैं जिससे कोई अन्य पाठ लिख कर संहितायोंको दूषित नहीं कर सकता।

२। दूसरा कारण यह है कि चरणव्यूह अनुक्रमिणकादि कई एक ग्रन्थोने वेदोंके मन्त्रो की संख्या तथा स्वरूपका निर्धारण किया है। फिर वेदोमें मिलावट कैसे हो सकती है।

जो लोग यह सिद्ध करतेहैं कि सामवेदके छन्दार्चिकमें आरण्यक अध्याय मिलाया गया है क्योंकि सामवेदके पूर्वार्चिकमें तीन पर्व हैं। आग्नेय पर्व १। ऐन्द्र पर्व २। पावमान पर्व ३। इन तीनोंसे बाहर आरण्यक अध्याय है। इस लिये यह आरण्यकका पाठ मिला दिया गया है। इस का उत्तर यह है कि प्रथम तो जो लोग सामके पूर्वार्चिकमें उक्त आग्नेयादि तीनो पर्व मानकर आरण्यकाध्यायका सामवेदसे बहिष्कार करते हैं। उनके मतमें पावमान पर्वका गन्ध मात्र सामवेदमें नहीं क्योंकि उनके लेखानुसार पावमान नाम सोमका है सो उनके मतमें सोमको पावमान पर्वका एक भी मन्त्र प्रतिपादन नहीं करता, किन्तु सब मन्त्र ईश्वरार्थके प्रतिपादक हैं।

इसी प्रकार अग्निपर्व और ऐन्द्रपर्व भी ईश्वरको ही प्रतिपादन करते हैं तो फिर क्या आरण्यकाध्याय ईश्वरका प्रतिपादक नहीं ?

और जो आरण्यक नामसे उनको आरण्यक के पाठ की भ्रान्ति हो गई है यह भी उनकी वेदानभिज्ञताका प्रमाण है। क्या १. वेदमें आरण्यक और उपनिषद् थे ही नहीं यदि न होते तो आते कहां से।

मालूम होता है उन्होंने इस प्रकार समझा है कि जैसे कोई कहे कि यजुर्वेदमें मुख्य उनतालीस अध्याय ही है चालीसवां पीछे से किसीने ईशा वास्य उपनिषद् मिलाकर बना दिया। ऐसे भले पुरुषको प्रथम यह तो निश्चय कर लेना चाहिये कि ईशा वास्यसे मन्त्र वेदमें गए अथवा वेदसे ईशावास्य उपनिषद् में आए मालूम होता है कि ऐसा स्फुट विचार न करनेसे यह भ्रान्ति हुई कि आरण्यकाध्याय वेदमें मिला दिया गया।

अन्य बात यह है कि ऐसे आक्षेप्ताओंको पहले यह भी सोच लेना चाहिये कि यह पुस्तकोंके क्रनालोजी Chronology अर्थात् इतिहासका प्रश्न है। जब तक कोई सामवेदका पुस्तक ऐसा न मिले जिसमें आरण्यकाध्याय की मिलावट न हो तो फिर निष्फल साहस क्यों करना।

इतना ही नहीं हमारे पास तो यह पुष्ट प्रमाण है कि जितने लोग आजतक सामवेद कण्ठ करते चले आए हैं उन सबके मत में आरण्यकाध्याय सामवेदके पूर्वार्चिक का छवां। अध्या है और इसी प्रकार उनके कण्ठस्थ चला आता है।

सच है जिनके मत में सामवेदमें न कोई अध्याय न स्वर न देवता केवल रुण्ड मुण्ड सामवेद है उनके मत में एक आरण्यकके उड़ादेनेकी कौनसी बड़ी बात थी। प्रपाठकों की रचना भी उनके मतमें बाललीलाके समान है, अर्थात् किसी प्रपाठकमें ६ मन्त्र किसी

में सात इसी प्रकार दस या पंन्दरा मन्त्र का स्यात् ही कोई प्रपाठक हो। ऐसे लोगोंसे यदि यह पूछा जाय कि क्या यह ईश्वर खेल करने बैठा था जो बालोपदेशके समान उसने प्रपाठक रचनाकी? ऐसा पूछने पर वह लोग उत्तर यह देते हैं कि ईश्वर वाणीमें सबसे बड़ी उत्तमता यह होती है कि उसमें पुनरुक्ति नहो। प्रपाठक चाहे कितना ही छोटा या बड़ा हो इसका कोई विचार नहीं चाहे सप्त श्लोकी गीताके समान वेदमें सप्त ही मन्त्र हों पर पुनरुक्ति का गन्ध उनमें न हो, तथास्तु।

पर ऐसे वादियोंसे यदि यह पूछा जाय कि फिर तुम्हारे मतमें "सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः" ७० मन्त्रके सामवेद में ६६।

इसमें वाक्य पुनरुक्ति क्यों है अथवा अध्याय ३४, यजुर्वेदमें तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु" यह पाठ छ वार क्यों आयाहै और "योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः" यह पाठ काण्ड ३। अथर्व वेद में छःवार क्यों आया हैं तो ऐसा पूछने पर वह मौनंसर्वार्थसाधकं इस शमविधि की शरण लेते हैं अन्य कुछभी उत्तर नहीं देते अस्तु।

मुख्य प्रसङ्ग आरण्यकाध्यायके प्रक्षिप्त होने का है। जो लोग आरण्यकाध्यायके ५५ मन्त्रोंको प्रक्षिप्त बतलाते हैं वे यह भी कहते हैं कि यह अध्याय परिशिष्ट है अर्थात् जो कमी वेदमें रह गई थी। उस की पूर्त्तिके लिये पीछेसे बनाकर मिला दिया गया। और इसका परिशिष्ट महानाम्नी आर्चिक है। फिर उसका परिशिष्ट सामवेद के वह पाञ्च मन्त्र हैं। जो आजकलके कई एक वैदिक संस्कारकर्त्तायोंने परिशिष्टमें रखे हैं यहां हम परिशिष्टका विचारतो पीछे करेंगे पहले यह पूछते हैं कि यह परिशिष्ट धारा जाह्नवी प्रबल प्रवाहके समान कबसे चल पड़ी? और समवाय-सम्बन्धके घटक अन्य समवाय उसके लिये अन्य समवाय उसके लिये अन्य फिर इस अनवस्थासे छुटकारा कैसे? यहतो आरण्यक

अध्याय निकालते निकालते परिशिष्टोंकी पूंछ ऐसी बढ़ चली कि क्या यह वेदमर्य्यादाको स्वाहा करके ही शान्त होगी ?

वास्तवमें तत्त्व यह है कि न आरण्यकाध्याय परिशिष्ट है और न महानाम्नी आर्चिक परिशिष्ट हैं ; किन्तु यह दोनों प्रकरण सामवेदके पूर्वार्चिकके अन्तर्गत हैं प्रमाण इसका यह है कि, सामसंहिता नं०२२३ पीटरसन् P. Peterson हस्तलिखित पुस्तकमें विद्यमान है। राजलायब्रेरी अलवरमें जाकर जिस को इच्छा चाहे वह देख सकता है।

इतना ही नहीं जिन सामवेदके पाञ्च मन्त्रो को परिशिष्टमें रख कर ईश्वर की भूलका संशोधन कई एक बुद्धिसागरोंने किया है। वे पाञ्चमन्त्र भी सामसंहिताके हैं परिशिष्ट नहीं।

और जो यह कहा जाता है कि संहितायोंमें भी परस्पर भेद है, यह सर्वथा मिथ्या है। जो लोग ऐसा कथन करते हैं उनको प्रथम। शाखा और संहितायोंका भेद समझ लेना चाहिये।

शाखा उसको कहते हैं कि जो वेदके किसी भागको लेकर व्याख्या की गई हो व वह भाग लोगोंके बोधन करनेके लिये शाखारूपसे पृथक् बोधन किया गया हो। जैसा कि ईशा वास्योपनिषद् है अथवा सामवेद की शाखायोंमेंसे आरण्यगान, अमृतहरण, ऊह गानादि अनेक भाग हैं इनका नाम शाखाएं हैं शाखाके अर्थ वेदसंहिताके करना सर्वथा भूल है।

जो लोग शौनिकचरणव्यूहको देखकर यह भूल कर बैठते हैं कि, राणायनी और कौथुमी, आजकल सामवेदकी दो ही शाखाएं मिलती हैं अन्य इन्द्रने वज्रमारकर नष्ट कर दीं इस मिथ्या कथाके आधार पर जो अपने मन्तव्य को नी रखते हैं उन को यह भी सोच लेना चाहिये कि फिर सहस्रवर्त्तमा सामवेद इसके क्या अर्थ होते

हैं क्या प्राचीन समयमें वह शेषके अनन्त मुखोंके समान था और आजकल उसके दोही मुख रह गए।

हमारे विचारमें सदैवसे सामवेद शाखाभेदसे सहस्र वर्त्तमा गिना जाता था अब भी इसीप्रकार साम तन्लादी अनेक शाखाएं उसकी भिन्न भिन्न लायबरेरियोंमें मिलती हैं राज लायबेरी अलवरमें साम-तन्त्र, ऊहगान, स्तोभ, अमृतहरण, इत्यादि अनेक शाखाएं मिलती हैं इन्हीके पाठ भेदोंको लेकर कई एक वैदिक मानि वनकर यह कहते हैं कि, वेदोंमें परस्पर पाठभेद है और इसका कारणवे यह वतलाते हैं कि स्वार्थी याज्ञिकोंने वेदोंमें नानाप्रकारके पाठ मिलादिये जो अब वेदोंको स्वच्छ और विमल कीर्त्ति रखनेके लिये निकाल देने चाहिये। १ प्रथम उदाहरण इस का यह दिया जाता है कि, सामवेदमें आरण्यकाध्याय मिलाया गया है। २ ऋग्वेद को छोड़कर अन्य सब वेदोंमें पुरुषसूक्त पीछेसे मिला दिआ। ३। महानाम्नी आर्चिक सामवेदमें पीछेसे मिलाया गया है एवं हज़ारों मन्त्र पीछेसे याज्ञिकोंने मिला दिए ऐसा कई एक मनमाने वेद-निर्म्मातायोंका मत है जो सर्वथा मिथ्या है।

उक्त आक्षेपोंमेंसे प्रथम हम आरण्यकाध्याय का समाधान करते हैं आरण्यकाध्याय सामवेदके पूर्वार्चिक का छवां अध्याय है आग्नेय ऐन्द्र, पावमान. इन तीनों पर्वोंसे इस की पृथक् संज्ञा है जिन लोगोंका यह कथन है कि पूर्वार्चिकमें केवल तीनही पर्व हैं उनके मतमें जिन मन्त्रोंमें अग्नि, इन्द्र और सोम। इन तीनोंमेंसे किसी का भी वर्णन नहीं उस प्रकणको किसके भीतर रखा जाय? अर्थसङ्गति से उसे तीनोंसे पृथक् ही रखना पड़ेगा इस भावसे यह प्रकरण उक्त तीनोंसे पृथक् है।

जिन लोगोंने सायणाचार्य्यके इस श्लोकके आधार पर इस अध्यायको संहितासे बहिष्कार कर दिया उन्होने अत्यन्त भूल की है।

वह श्लोक यह है

कृपालु सायणाचार्य्यः वेदार्थंकर्तुमुद्यतः ।
आरण्यकाभिधः षष्ठोऽध्यायः व्याक्रियतेऽधुना ॥

उक्त श्लोकका भाव यह है कि. सायणाचार्य्य यह कहते हैं कि अव हम छवें अध्यायका भाष्य करते हैं ।

वादीकी आशङ्का यह है कि , इस नई । प्रतिज्ञा करनेसे मालूम होता है कि यह प्रकरण वेदवाह्य है । यदि ऐसा हो तो प्रत्येक मण्डल के आदि में प्रतिज्ञा करनेसे मण्डलोंके मण्डल ही प्रक्षिप्त होने चाहिये ।

अन्य दोष यह है कि जहां भाष्य करने की नई प्रतिज्ञा नहीं की वह विभाग भी निकाल देना चाहिये जैसे कि ऐन्द्र, पावमान, इनके आरम्भमें भाष्यकरने की कोई भी प्रतिज्ञा नहीं तो क्या यह भी प्रक्षिप्त हैं ।

वास्तवमें वात यह है कि इस अध्यायमें षड् ऋतुयोंका वर्णन और विराट् रूपका वर्णन पाए जानेसे इसकी प्रधानता थी इस लिये सायणाचार्य्यने यहां कतिपय श्लोक लिखकर इस षष्ठे अध्याय की व्याख्याका प्रारम्भ किया । अतएव इस प्रतिज्ञासे यह अध्याय वेदवाह्य कहना साहस मात्र है ।

और जव इसको षष्ठाध्याय कहा है तो प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि किसका षष्ठाध्याय इससे स्पष्ट सिद्ध है कि प्रथम ५ अध्यायके अनन्तर यह षष्ठाध्याय है । और जो यह कहा जाता है कि प्रथम प्रतिज्ञामें ही यह प्रतिज्ञा आचुकी फिर पृथक प्रतिज्ञा क्यों की? इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो प्रारम्भमें कोई प्रतिज्ञा ही नहीं पर यदि उसके प्रारम्भके प्रतिज्ञा की कल्पना भी करली जाय तो

यह कौन तर्क है जिससे षष्ठाध्याय भी उससे आजाय क्या कोई कह सकता है कि आग्नेय, ऐन्द्र, पावमान. इन तीन पर्वों में ही ६ अध्याय गतार्थ हो गया ? यदि ऐसा है तो आपके मतमें तीन पर्वों का विभाग पूर्वार्चिक को भिन्न करनेके लिये पर्य्याप्त था फिर अध्यायों की कल्पना पृथक् क्यों की ?

अध्यायों की रचनासे परिणाम भली भान्ति निकल सकता है कि पूर्वार्चिकमें पाञ्च अध्यायोंसे भिन्न षष्ठाध्याय भी है जिसको सायणाचार्य्यका यह लेख स्पष्ट रीतिसे सिद्ध करता है ।

"आग्नेयमैन्द्रपावमानमिति काण्डत्रयात्मको योऽयं छन्दो नामकः संहिताग्रन्थः सोऽयमारण्यकेन अध्यायेन षट्संख्या पूर्णेण सह षड्भिरध्यायैरुपेतः ।"

अर्थ । आग्नेय, ऐन्द्र, पावमान, इन तीन पर्वोंवाला । जो यह छन्दो नामक संहिताग्रन्थ है वो यह आरण्यकाध्यायके साथ जो यह अध्याय छः की संख्याको पूर्ण करता है इस अध्यायके साथ. यह ग्रन्थ छः अध्यायोंवाला कहलाता है । क्या यह सायणका लेख प्रमाण नहीं ? यदि है तो फिर आरण्यकाध्यायके साम-वेदान्तर्गत होनेमें क्या सन्देह है ।

यदि यह कहा जाय कि, यह तीनो पर्वोंके अन्तर्गत नहीं इस लिये प्रक्षिप्त है । तो उत्तर यह है कि जिस प्रकार कर्म्म, उपासना. ज्ञान. इन तीनों काण्डोंमें निखिल वेद गतार्थ है इसी प्रकार यह अध्याय भी काण्डत्रयात्मक ही है अर्थात् जिन मन्त्रोंमें अग्निविद्या वा अग्नि परमात्म सम्बन्धि गुणोंका वर्णन है । वह अग्नि पर्वमें अन्तर्गत हैं, एवं इन्द्रके गुण वर्णन करनेवाले मन्त्र इन्द्रपर्व और सोम स्वभावको वर्णन करनेवाले सोमके अन्तर्गत होनेसे पूर्वार्चिक पर्वत्रयात्मक ही है. इसमें कोई दोष नहीं ।

आरण्यका अध्यायको वेदबाह्य बतलानेवाले वादीको यह भी समझ लेना चाहिये कि जब सायणाचार्य्य की सम्मतिमें यह संहिताके अन्तर्गत है एवं सत्यव्रत सामाश्रमी की सम्मतिमें यह संहिताके अन्तर्गत है। इतना ही नहीं किन्तु आजतक जितने प्रकार की संहितायें छपी हैं उन सबमें आरण्यका अध्याय संहिता के अन्तर्गत माना गया है। फिर इस अध्यायको संहितासे छांट देनेवाले को कौनसी आकाश वाणी हुई है कि यह संहिता का शेष है संहिता नही।

और ऐसा माननेवालोंसे यदि यह पूछा जाय कि, यह यज्ञशेषके समान वेदशेष की परिभाषा आपने कहांसे निकाली? तो उत्तर यही मिलेगा कि शेषके अर्थ परिशिष्टके हैं। फिर यदि यह पूछा जाय कि परिशिष्ट तो आपके मतमें केवल पाञ्च मन्त्र ही हैं। फिर यह ५५ पचपन मन्त्रका परिशिष्ट कहांसे निकाला। योंतो सामवेद सारा ही ७० सत्तर मन्त्रमें पूरा हो जाता है। फिर ५५ परिशिष्ट कैसे? तो उत्तर यह मिलता है कि, इतना ही नहीं किन्तु सामवेदका परिशिष्ट यह आरण्यकाध्याय इसका परिशिष्ट महानाम्नी आर्चिक फिर पाञ्च मन्त्र इस प्रकार ५५ मन्त्रका आरण्यकाध्याय १० का महानाम्नी आर्चिक ६५ और पाञ्चका फिर परिशिष्ट एवं पूरे सत्तर मन्त्रका वेद और ज्यों का त्यों पूरे सत्तर मन्त्रका परिशिष्ट हो जाता है।

यदि यह पूछा जाय कि परिशिष्टके अर्थ क्या? तो उत्तर यह मिलता है कि जो बात पीछे याद आती है या यों कहो कि जो भूल संशोधन की जाती है उसका नाम यहां परिशिष्ट है।

ऐसी अवस्थामें विचार यह उत्पन्न होता है कि यह परिशिष्ट किसने बनाया ईश्वरने! व जीवने? यदि कहा जाय कि ईश्वरने तो फिर वह संहिता का भाग क्यों नहीं। और उसको परिशिष्ट करके लिखनेमें ईश्वरका क्या प्रयोजन था?

यदि कहा जाय कि जीवने परिशिष्ट पीछेसे जोडदिया तो जीव का ईश्वर की पुस्तकमें मिलावट करनेका क्या अधिकार? अस्तु एवं सूक्ष्म समीक्षा करनेसे तो परिशिष्टोंका शेष कदली स्तम्भके विदीर्ण करनेके समान सर्वथा निःशेष प्रतीत होता है इस लिये हम इस निःसारान्त वस्तु के विचार को छोड़कर इस बात का विचार करते हैं कि, सामवेदके पूर्वार्चिक का छवां अध्याय सामसंहिता कहला सकता है व नहीं? हमारे विचारमें वह सामसंहिताके अन्तर्गत है। १ प्रथम प्रमाण इसका यह है कि आज तक जितनी हस्तलिखित संहिता की पुस्तकें पाई जाती हैं उन सबमें यह अध्याय पूर्वार्चिकके अन्तमे है बाह्य नहीं।

२। जितने सामवेदके टीकाकार हैं उन सबने इस का भाष्य किया है। और ज्यों का त्यों उसी स्थानमें रखकर भाष्य किया जिस स्थानमें अर्थात् पूर्वार्चिकके अन्तमें यह पाया जाता है।

३। इसके मन्त्र किसी अन्य वेदसे नहीं लिये गए और नाही किसी वैदिक व्याख्यान कर्त्ताने इस को परिशिष्ट बतलाया है।

माधव-भट्टके भाष्यका जो कथन किया जाता है कि माधव कृत व्याख्यामें इसको संहितासे बाहर करके भाष्य किया है। यह कथन मिथ्या ही नहीं। किन्तु अल्पश्रुतों को मोहमयी महामायाके सागरमें डुबानेवाला है।

कारण यह कि माधवभट्टके भाष्यके विषयमें आरण्यकाध्यायको प्रक्षिप्त बतलानेवाला यह लिखता है कि, "इसका भाष्य कहीं कहीं भारतवर्षमें पाया जाता है" इस लेखसे प्रतीत होता है कि आक्षेप्ताका यों तो ऐसा साहस बड़ा हुआ पाया जाता है कि, ईश्वरतक की भूलें बतलाने कोभी तैयार है, पर अपने पास इतनी अल्प सामग्री रखता है कि उसे यह भी ज्ञात नहीं के माधवभट्टका भाष्य कहां कहां मिलता है, और कैसा है कहीं कहीं भारतवर्षमें मिलता है।

इसके अर्थ तो यह हैं कि यूर्पादि देशोंमें नहीं मिलता । पर यहां विचारना यह चाहिये कि अन्य देशोंमें मिलने न मिलने का किस को सन्देह था ? फिर भारतवर्ष वतलाकर ऐसा ठीक ठीक पता किसको दिया ? जो जाकर ढूंड वा देखले ।

सच तो यह है कि जिस को स्वयं ज्ञान न हो और दूसरेके मनमें मोह उत्पन्न करना ही इष्ट हो तो ठीक पता कैसे दिया जाय ।

लो देखो इस मोहमयी मायाके मर्द्दन करने के लिये हम हस्तामलकवत् पुष्ट प्रमाण देते हैं जिसमें सन्देहका अवकाश नहीं ।

पुस्तकशाला राजधानी अलवर अर्थात् राजपुस्तकालय अलवरमें माधवभट्टकृत सामवेदका सारा भाष्य हस्तलिखित रखा हुआ है । जिस को सन्देह हो जा कर देखले, इसमें आरण्यकाध्याय को व्याख्यासंहितामें है । इस पुस्तका नं० २२३ । है, जो पुस्तकालयकी अङ्गरेजी । तथा हिन्दी सूचीसे मिल सकता है यह माधवभट्ट वह है, जिसको वादी यह मानता है कि इसका भाष्य सायण और महीधर दोनोंसे पहले है । इस लिये ननु नच करने योग्य नहीं ।

इतनाही नहीं किन्तु जो इस पुस्तकालयमें हस्तलिखित मूल संहितायें पाई जाती हैं उनमें भी आरण्यक अध्याय ज्यों का त्यों पूर्वाचिक का छठा अध्याय है ।

फिर जो सायणभाष्य की फेरफार करके विचारे पं० सत्यव्रत सामाश्रमी पर क्रोधोद्गार निकाल कर यह कहा जाता है कि, श्रीसत्यव्रत सामाश्रमीने जो आरण्यकाध्याय को सामसंहिता वतलाया है वह निन्दनीय है वा पण्डित सत्यव्रत की मनो घड़न्त हैं । इसमें साहससे वढ़कर क्या तत्त्व है ।

और जो अजमेर वैदिक पुस्तकालयके अधिकारियोंको इस वातपर प्रायश्चित्तीय ठहराया है कि उन्होंने आरण्यकाध्याय को संहिताके वीच क्यों छाप दिया अर्थात उसे निकालकर वाहर नहीं

किया इस लिये, वह प्रायश्चित्तीय हैं। तो हम पूछते हैं कि, वेद हत्या का प्रायश्चित्त क्या है ? हमारे विचारमें तो

सुरापो मुच्यते पापात्, तथा गोघ्नो विमुच्यते ।
मुच्यते ब्रह्महन्ता च, वेदहन्ता न मुच्यते ॥

इत्यादि भावोंकाध्यान धरके वैदिक यन्त्रालयके आर्य्यपुरुषोंने वेदके किसी अध्याय को निकालने का साहस नहीं किया ।

प्रसङ्ग सङ्गतीसे यहां इस बात का परिचय दिला देना भी सङ्गत प्रतीत होता है कि, आजकलके वेदज्ञातायोंका ज्ञान यहां तक सङ्कुचित है कि ऐतरेयालोचनके पृ० १३२ पर श्रीपं० सत्यव्रत सामाश्रमीने यह लिख दिया कि, शांख्यायनी शाखाका एक भी पुस्तक नहीं मिलता । इसको देखकर, वे० स० के० पृष्ठ ८७ पर यह लिख दिया कि, शांख्यायनी इस समय संसारमें नहीं है । इससे बढ़कर अनर्थ क्या हो सकता है कि शांख्यायनी बिचारी जीती जागती का अन्त्येष्ठी संस्कार कर दिया। और पं० सत्यव्रत जीके अनन्तर अब यह शाखा सुखायटीके अधिकारियोंके ज्ञानगोचर हो गई। क्या इसी ज्ञानपर लोगोंको प्रायश्चित्तीयठहराया जाता है ?

श्रीपं० सत्यव्रत जीनेतो यही लिखा था कि

अस्माभिरद्यापि न दृष्टमित्येव सुवचम् ।

हमने आजतक नहीं देखी यही कथन ठीक है पर संसार भरके ऋषि, मुनियोंकी भूलें निकालनेवाले । अल्पश्रुतने तो यहांतक प्रतिज्ञा की थी कि । संसारमें ही नहीं, अस्तु ।

स्वयं संशयात्मा हो कर वेदोंमें सन्देह उत्पन्न करनेसे बढ़कर कोई सामाजिक पाप नहीं इसी अभिप्रायसे हमने कहा है कि, वेद-हन्ता न मुच्यते ।

मुख्य प्रसङ्ग यह है कि आरण्यक क्या है? जो (अरण्य) वनमें अध्ययन किया जाय उस को आरण्यक कहते हैं। इस अर्थसे तो जो कोई भी (अरण्य) अर्थात् वनमें अध्यायन किया जाय, उसे ही आरण्यक कहना चाहिये। पर आरण्यकके अर्थ कर्म काण्डप्रतिपादक भागके हैं इस अर्थसे भी तात्पर्य्य साफ नहीं निकलता क्योंकि कर्म्मकाण्डके प्रतिपादक भी अनेक ग्रन्थ हैं। वेसभी आरण्यक कहलाने लगेंगे। पारीभाषिक अर्थ यह हैं कि, जो उपनिषद् भाग को छोड़कर वेदार्थका प्रतिपादन करनेवाले सन्दर्भ हैं उनको आरण्यक कहते हैं जैसे ऐत्तरेय आरण्यकादि ग्रन्थ हैं।

यहां विशेष प्रतिपाद्यांश यह है कि, सामवेदके इस छठे अध्याय का नाम आरण्यक क्यों पड़ा? और वेदमें आरण्यकका क्या काम? इस प्रश्नके उत्तर देनेसे प्रथम हम सामवेदकी संज्ञाका विचार करते हैं कि, पूर्वार्चिक, और उत्तरार्चिक, यह दो संज्ञाएं क्यों है? इस प्रश्नका उत्तर यह मिलता है कि, आर्चिक नाम उसका है जो ऋचायोंका व्याख्यान हो तो फिर पूर्वार्चिक उत्तरार्चिक यह व्याख्यान भी नहीं। हां यह माना जा सकता हैं कि प्रकरणोंको भिन्न भिन्न करनेके कारण इनको व्याख्यान भी कह सकते हैं तो फिर क्या मण्डल, सूक्त और अध्याय, इनको आर्चिक क्योंने कहैं क्योंकि वेदके स्थलोंको भिन्न भिन्न तो यह भी करते हैं इस प्रकार विचार करनेसे प्रतीत यह होता है कि, पूर्वार्चिक उत्तरार्चिक यह एक प्रकार से वेदके पूर्वार्द्ध के तथा उत्तरार्द्धके नाम हैं। सामवेदके पूर्वार्द्धको पूर्वार्चिक कहते हैं एवं उत्तरार्द्धको उत्तरार्चिक कहते हैं और पूर्वार्चिकका नाम ही छन्दार्चिक है। चन्दयतीति छन्दः, अथवा चन्द्यते अनेनेति छन्दः, कि जो आह्लादको उत्पन्न करे व जिससे आह्लाद उत्पन्न किया जाय उसको छन्द कहते हैं, तो फिर क्या छन्दार्चिक यह नाम

ऋग्वेदादिकों में क्यों न व्यवहृत किया जाय इस का उत्तर यही मिलते है कि यह भी एक संज्ञा है। जो सामवेदके पूर्वार्द्धमें ही व्यवहृत की जाती है अन्यत्र नहीं।

यदि यह पूछा जाय कि सामवेदके पूर्वार्द्धकी दो संज्ञाएं क्यों एक से ही काम चल सकता था तो उत्तर यही है कि. छन्दार्चिक और पूर्वार्चिक यह दोनो ही संज्ञायें। सामवेदके पूर्वार्द्ध की हैं। एवं सामवेदके पूर्वार्चिकके षष्ठे अध्याय की छठा अध्याय और आरण्यकाध्याय यह भी दोनों संज्ञाएं हैं। इस लिये आरण्यक नामसे किसी भ्रममें नहीं पड़ना चाहिये कि, यह किसी आरण्यक ग्रन्थका पाठ वेदमें किसीने मिला दिया।

अन्य कारण यह भी है कि अर्य्यत इत्यरण्यं, जिसमें अन्तिम अवस्थामें जाय उसका नाम अरण्य है, पूर्वार्द्धको पढ़ते हुए अन्तमें यह छवां अध्याय वढ़ा जाता है इस लिये इसको आरण्यक कहते हैं क्योंकि अरण्ये अन्ते अधीयतः इत्यारण्यकः इस व्युत्पत्तिसे स्पष्ट सिद्ध है कि प्रकरण की समाप्ति पर पढ़े जानेवाले का नाम आरण्यक है। इस प्रकार इस पूर्वार्चिकके छठे अध्यायका नाम आरण्यक हुआ।

यदि कोई यह कहे कि प्रकरणके अन्तमें पढ़े जानेके कारण इस का नाम यदि आरण्यक है तो यह अध्याय संहिताका शेष होना चाहिये इसका उत्तर यह है कि अन्त शब्द यहां सापेक्ष है अर्थात् पूर्वार्द्ध का अन्त होनेसे यह अध्याय आरण्यक है।

और जो लोग इस अध्याय को संहितासे वहिष्कार करके संहिताका शेष वतलाते हैं उनके मतमें भी यह वास्तवमें अन्तमे नहीं रहता क्योंकि वह लोग इस अध्याय को तो संहिताका शेष कहते हैं और फिर इसका शेष महानाम्नी आर्चिक को कहते हैं और उसका शेष फिर सामका परिशिष्ट और वनाते हैं इस प्रकार शेष शेषी-

भावका सन्तान सन्तानीभाव यहांतक बढ़ाते हैं कि केवल अन्तका परिशिष्ट ही विचारा। निस्सन्तान रह जाता है। वा यों कहो कि केवल पांच ऋचायोंके भाग्यमें ही यह सौभाग्य लिखा है कि, पुत्र-रूप सन्तानोंसे वर्जित रहें अन्य नहीं।

फल यह निकला कि. आरण्यक एक छठे अध्यायकी संज्ञा है। जैसा कि पावमान संज्ञा है। यदि कोई यह कहे कि यह संज्ञाएं मनो घड़न्त हैं तो हम पूछते हैं कि, तुम्हारे मतमें प्रपाठक संज्ञा भी तो मनो घड़न्त है। फिर तुमने उसे क्यों रखा है एवं पूर्वा. र्चिक, उत्तरार्च्चिक, रखने की क्या आवश्यकता थी। केवल एक ही निर्वन्ध प्रवाह सारे वेदमें आदसे लेकर अन्ततक वहिता फिर प्रपाठकों के पाठ की क्या आवश्यकता थी?

मालूम होता है कि कई एक लोग वैदिकं मन्या बनकर इस प्रकार प्रसिद्ध होना चाहते हैं कि सामवेदमेंसे अध्याय भी उड़ा दिये जांय। क्यों कि कुछ न कुछ छिन्न भिन्न करनेसे घटं भित्वा पटं छित्वा का अनुकरण करके येन केन प्रकारसे प्रसिद्ध होना चाहिये।

प्रकृत यह है कि वैदिक यन्त्रालयके अधिकारियोंने यह अत्यन्त प्रशंसनीय काम किया है, जो सामवेदमें आरण्यकाध्याय महानाम्नी आर्चिक ज्यों का त्यों छापा है। जिन लोगोंने इनको संहिताके अन्तमें छाप दिया। मालूम होता है उन्होने किसी अल्पश्रुतसे सुनकर अत्यन्त भूल की है। जो ऐसी गलती खाई है कि, इन मन्त्रोंको पूर्वार्चिकसे बाहर किया है। विषय सङ्गति देखनेसे भी यह मन्त्र पूर्वार्च्चिकके हैं, उत्तार्च्चिकके नहीं।

प्रमाणके लिये देखो हस्तलिखित संहिता राज लायबेरी अल-वर, जयपुर, नेपाल बहुत क्या यहां कलकत्तेमें जो एशियेटिक सोसायटीमें हस्तलिखत सामसंहिता रक्खी हुई है उसमें भी

उक्त दोनें प्रकरणोंके मन्त्र पूर्वार्चिकमें हैं। अंश मात्र भी अन्यथा नहीं।

और जो यह कहा जाता है कि, कलकत्ता एशियेटिक सुसायटीमें गान संहिता छपी है उसमें पाठभेद है। जैसे कि हम पूर्व गायत्री मन्त्र को उद्धृत करके दिखला आए हैं इसका उत्तर यह है कि सुसायटीमें कोई गानसामसंहिता नहीं छपी। सामसंहिताके अन्तमें कुछ गान छपे हैं उनका नाम उपचारसे संहिता है। जैसा कि अन्य ग्रन्थों मे भी संहिता शब्दका व्यवहार होता है। मुख्य संहिता शब्द ऋग्, यजु, साम, अथर्वमें ही होना चाहिये अन्यत्र नहीं।

केवल संहिताके नामसे विगाड़ा हुआ पाठ वा यों कहो कि गानके लिये न्यूनाधिक किया हुआ पाठ सामवेद कदापि नही समझा जा सकता। गानसंहिताका उदाहरण देकर संहिताओंमें परस्पर पाठभेद सिद्ध करना। अज्ञजन वञ्चना की लालसासे भिन्न अन्य कुछ मूल्य नहीं रख सकता।

जो लोग वेदोंमें पाठभेद वतला कर, आजकल नए वेद वनाना चाहते हैं उनको यह भी सोच लेना चाहिये कि, पाठभेद मात्रसे पुस्तक अप्रमाणित नहीं हो सकता नाही इतने मात्रसे उसके कई एक स्थलोंको प्रक्षिप्त कहा जा सकता है कारण यह है कि पाठभेद तो लेखक प्रमादसे भी हो जाता है। यदि पाठभेदसे ही पुस्तकोंके स्थलोंके स्थल प्रक्षिप्त सिद्ध करने वैठ जायें तो संसार भरमें एक भी ग्रन्थ सावत न वचेगा।

संहिताओंके पाठभेद मात्रसे संहितायोंमें मिलावट अर्थात् प्रक्षिप्त सिद्ध करना एक वञ्चना मात्र है।

आजतक वेदमर्य्यादा यह चली आई है कि किसी मनुष्यने भी वेदोंपर प्रक्षिप्तका कलङ्क नहीं लगाया और नाही पाठभेद मात्रसे वेदोंपर प्रक्षिप्त होनेका कलङ्क लग सकता है क्योंकि पाठभेद तो

लेखककी भूलसे भी हो जाता है और अशुद्ध पुस्तकी प्रति उत्तारनेसे होता है परन्तु इतने मात्रसे अध्यायोंके अध्याय और सूक्तोंके सूक्त प्रक्षिप्त नहीं कहे जा सकते। तात्पर्य्य यह है कि जबतक प्रक्षिप्तका कोई प्रयोजन न बतलाया जाय, तब तक प्रक्षिप्त कहना। केवल साहस मात्र है।

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धायां वेदमर्य्यादायां
प्रथमोऽध्यायः समाप्तः।

—*—

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।
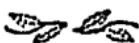
जो कइ एक लोग यह कहते हैं कि, वेद जब मनुष्यके मस्तिष्कमें से होकर निकले फिर ज्यों के त्यों सही कैसे कहे जा सक्ते है? क्योंकि मनुष्य का मस्तिष्क तो भूलोंसे भरा हुआ हैं फिर वेद भूल रहित कैसे ?

इसका उत्तर यह है कि, जो वस्तु मनुष्यके मस्तिष्कसे निकले, अर्थात् मनुष्यके मस्तिष्क द्वारा आए। यदि वह प्रत्येक वस्तु भूल सहित मानी जाय तो, जो लोग वेदोंकी संहितायोंमे से भूलें निकाल-कर अपनी समझमें शुद्ध करते हैं वे भी तो मनुष्यके मस्तिष्क और हाथों का काम है। फिर वह शुद्ध कैसे ?

हमारे विचारमें एसी कुतर्कोंसे वेदवाणी को दूषित करनेका काम उन लोगोंका है. जो हृदयसे वेदोंपर विश्वास न करते हों किन्तु किसी लोक वासनासे वैदिक शिखरके मस्तकारूढ होकर वेदाग्रगराय बनकर वञ्चनाका वीड़ा उठाना चाहते हों, अन्यथा क्या कारण के यों तो मनुष्य मात्रके लिये वेदोंको विना ननु नच किये ही, ईश्वरीय ज्ञान मानें। पर भीतरसे उनके अङ्ग अङ्गका विच्छेद करें।

ऐसे लोगोंके हार्दिक प्रतिविम्ब उतारनेके लिये प्रक्षिप्तका प्रयोजन पूछना अत्यावश्यक है। हम यदि उनसे यह पूछें कि वेदोंमें प्रक्षिप्त स्थलोंका प्रक्षेप किसने कर दिया। तो उत्तर यह मिलता है कि याज्ञिक लोगोने। यदि यह पूछा जाय कि उनका क्या प्रयोजन था? तो उत्तर यह मिलता है कि भिन्न भिन्न प्रकारके काम्ययज्ञ

कराके अपनी कामनायोंका पूर्ण करना। फिर यदि यह पूछा जाय कि, पुरुषसूक्त चारों वेदोंमें आता है। यह किस काम्ययज्ञका साधन है और इस से किस प्रकार कामना सिद्ध की जाती है। एवं "शन्नो देवीरभिष्टये" यह चारो वेदोंमें समान है। यह किस याज्ञिकने किस प्रयोजनके लिये मिला दिया? इत्यादि प्रश्नोका उत्तर मौनसे भिन्न उनके पास कुछ भी नहीं। क्योंकि पुरुषसूक्त पुरुष परमात्माके ऐश्वर्य्य को वर्णन करता है। किसी यज्ञसम्बधी कामना का इसमें वर्णन नहीं। एवं "शन्नो देवी" कहीं ईश्वरके स्वरूप वर्णनके भावसे, कहीं आचमनके भावसे, कहीं सुख को वृष्टिके भावसे, भिन्न भिन्न स्थलोंमें आता है इसमें कोई दोष नहीं। अस्तु।

इस विषयको विस्तार पूर्वक पुनरुक्ति दोषोद्धार विषयमें लिखेंगे। यहां मुख्य प्रसङ्ग यह है कि, वेदोंमें एक मात्रा की भी मिलावट नहीं। जो यह कहा जाता है कि, जीवानन्दविद्यागरने आरण्यकाध्याय निकालकर सामवेद छापा है; एवं जूनागढ़में जो साम-संहिता छपी हैं वह परिशिष्ट निकाल कर भी २१६ दोसौ उन्नीस मन्त्र की है।

प्रथम तो यह कथन ही उन लोगका है जो वेदों की उधेड बुन करनेके लिये सदारी कुशकाशावलम्बन न्याय अर्थात् डूबतेको तृणका साहारा। इस अवलम्बनसे वेदद्वेषके दोषमें अन्य लोगोंको भी झूट मूठ घर घसीटा करते हैं। अस्तु। कैसा ही हो तव भी हमको इनके आक्षेपोंका यथार्थ उत्तर देना अत्यावश्यक है।

जीवानन्द विद्यासागरके विषयमें जो यह कहा जाता है कि, उन्होने आरण्यकाध्याय सामवेदसे निकाल दिआ यह सर्वथा झूठ है। जिसको विश्वास नही वह उनके पुस्तकालयसे चिट्ठी लिखकर पूछ ले।

दूसरी वात यह कि, जूनागढ़में जो संहिता छपी है, वह केवल २१६ मन्त्र की है। इसका उत्तर यह है कि, यह संहिता नहीं किन्तु किसी शाखाको इन्होने संहिताके नामसे छाप दिया है। ऐसे ऐसे वेदोंके नाम पर वहुत पुस्तक मिलते हैं, जो वास्तवमें, वेदशाखा हैं, और छापनेवालोने अपने अज्ञानसे वेद समझा है। जैसाकि ऊह गान गेय गान गायत्र गान इत्यादिकोंके ऊपर भी संहिता लिखा है इयादिकोंमें पाठभेद है मूल संहितायोंमें नहीं। क्योंकि यह वात सर्वसम्मत है कि वेदोंमें पाठभेद नहीं इसके लिये पुष्ट प्रमाण यह है कि, सायणाचार्य्य अपनी ऋग्वेद की भूमिकामें लिखते हैं कि

"मन्त्रेषु पाठभेदः शाखाभेदेन ।"

(सायणभूमिका पृ० ७)

वेदोंमें जो पाठभेद है वह, भिन्न शाखायोंके अभिप्रायसे है। मूल संहिताओंमें नहीं। संहितायोंको शाखा मानकर जो लोगोंमें वेदोंके पाठभेदका सन्देह उत्पन्न करते हैं वह वैदिक लोगों की दृष्टिमें भयङ्कर पाप करते हैं।

और जो लोग यजुर्वेदके अध्याय वारांके भाष्यका उदाहरण देकर श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द जी को वेद छांटनेवाला सिद्ध करते हैं वह जान वूझकर मिथ्या कलङ्क लगाकर ऋषि को दूषित करते हैं। देखो श्रीस्वामी दयानन्द जीका लेख यह है—

"तं मत्नया अयं वे नः", यह दो प्रतीकें पूर्व कहे अध्याय ७ मन्त्र १२९-१६ की, यहां किसी कर्मकाण्डविशेषमें बोलनेके अर्थ रक्खी हैं।" (यजु० ३३ । २१)।

क्या कोई कह सकता है कि, इसके अर्थ छांटनेके हैं? किन्तु रखनेके अर्थ, यहां वेदबनानेवाले परमात्माने रक्खी हैं। यह तात्पर्य्य है भला इसका वेद छांटनेमें क्या उपयोग?

सत्य है "स्वार्थी दोषं न पश्यति" इस कथनके अनुकूल जिन्होंने मिथ्या कलङ्क लगाकर वेदमार्गसे भुलाना है उनका सत्यासत्यसे क्या काम?।

देखो महर्षि स्वामी दयानन्द जी का वेदोंके विषयमें यह लेख है कि, जो मन्त्र चारोवेदोंमें आते हैं वे ऋग्वेदमें पदार्थोंके गुणोंके प्रकाशके लिये। और यजुर्वेदमें यज्ञके लिये। साममें ज्ञान और क्रिया अर्थात् कर्म्मयोग और ज्ञानयोगके लिये। और अथर्वमें फलसिद्धिके लिये अर्थात् नीतिविद्यादि तत्त्वविचारोंके लिये। यह उस संस्कृतका भाव हैं जो श्री १०८ स्वामी जी महाराजने, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृ० ३४२ पर लिखी है।

इतना ही नहीं, किन्तु श्रीस्वामी जी महाराजने अपने ग्रन्थोंके अनेक स्थानोंमें यह लिखा है कि, वेद सर्वथा निर्भ्रान्त है। और स्वमन्तव्योंमें आकर फिर दृढकर दिया है कि ऋक्, यजु, साम, अथर्व इन चारों संहितायोंमें कहीं भी भूल नहीं ऐसे स्पष्ट मन्तव्य को बदलने की चेष्टा करना बड़ेढीठ साहसियों का काम है। जो विना ही देखे सुने सहस्रों कोसोंसे, यह लिख बैठते हैं कि जीवानन्दने आरण्यकाध्याय सामवेदसे पृथक् निकाल कर छापा है। और यह एक ऐसा मिथ्या वाद है कि, जो मायावादियोंके मिथ्यावादको भी अतिक्रमण कर जाता है। ऐसा ही जूनागढ़ की संहिताके विषयमें मिथ्या कथन है कि उसमें केवल २१६ ही मन्त्र हैं। हमारे विचारमें तो वेदविषयमें झूठसे कामलेनेवाले पूर्वोक्त अनृतवादियोंको कुमारिल भट्टके सदृश प्रायश्चित्त करके यह दूषित चोला बदल देना चाहिये।

जो यह कहते हैं कि स्वामी दयानन्द भी मौजूदा वेदोंमें भूल मानकर इन को छांठना चाहते थे।

इतना ही नहीं, यह भी कहा जाता है कि, सामवेदके मन्त्र अलग उनके लिये छांटे हैं जो शुद्ध सामवेद पढ़ना चाहते हैं, और जो ऋग्में मिला हुआ सामवेद पढ़ना चाहते हों वे ऋग्में पढलें। यह युक्ति तो इस युक्तिको भी मात करती है, जैसे कोई कहे कि मैंने वेदोंका खण्डन इस लिये किया है कि, जिन मन्त्रोंमें मैंने आक्षेप करके उन्हे जंगली लोगोंके गीत बतलाया है, वे मन्त्र दो जगह पढ़नेसें वेदोंका प्रचार अधिक होगा।

बुद्धके समयसे लेकर आजतक वेदोंपर अनेक प्रकारके आक्षेप और साहस होते चले आए हैं। पर इस साहसको देखकर तो आक्षेप्ताकी अद्भुत महिमा मालूम होती है जो वेदोंका अनुयायी बनकर वेदोंके मूलपर कुठाराघात करे और फिर यह कहे कि, मैं कुठार प्रहार नहीं करता किन्तु तुम्हारा सुधार करता हूं।

यहां अधिक शोक उन लोगों की बुद्धिपर है कि जो इतना विवेक भी न हीं रखतेकि १८७३ सामवेदके मन्त्र इस सुधारककी कृपासे केवल सत्तर कैसे रह गए? यदि इसी प्रकार सुधारकों की कृपासे वेदोंका सुधार होने लगा तो सप्तश्लोकी गीताके समान सम्भव है कि, केवल ७ मन्त्र शेप रह जावें; क्योंकि सुधारका टैस्ट (Taste) आक्षेप्ता की बुद्धिमें यह है कि, जो किसी न किसी पुरुषने मुखसे कह डाला हो। जैसा कहा जाता है कि, ७० मन्त्रोको छोड़ कर शेप सामवेदके सब मन्त्र ऋग्वेदसे लिये गए हैं?

दूसरा टैस्ट आक्षेप्ताकी बुद्धिमें यह है कि किसी पुस्तकमें वा अखबारमें छप चुका हो।

तीसरा टैस्ट यह आक्षेप्ता बलपूर्वक मानता है कि जो मेरी बुद्धिमें घृणोत्पादक व वेदोंको कलङ्कित करनेवाला हो।

प्रथम हम इनके प्रथम टैस्ट पर विचार करते हैं यदि किसी व्यक्तिविशेषके कथनपर यह सही समझा जाय कि सामवेद सिरफ सत्तर मन्त्रका हैं तो फिर जो सहस्रो वर्षोंसे वेदको कण्ठ करते चले आते हैं उनके कथनके अनुसार १८७२। मन्त्रका क्यों न समझा जाय? कारण यह कि जिन वैदिकोंके कुलोंमें कुलक्रमागत मर्य्यादा चली आई है। वही वेदकी इयत्ता अर्थात् संख्या जाननेके लिये ठीक हो सकते हैं न कि किसी व्यक्तिविशेष का कथन, इस लिये केवल किसी अल्पश्रुतके कथन मात्रसे वेदोंके घटाने की चेष्टा करना सर्वथा निन्दनीय है।

दूसरा टैस्ट जो पुस्तकमें छपनेका वतलाया जाता है कि, जीवानन्द विद्यासागर की पुस्तकमें आरण्यकाध्याय और महानाम्नी आर्चिक रहित सामवेद छपा है। वा जूनागढ़में प्राणशङ्कर तथा दयाशङ्करका नाम वतलाया जाता है कि इन्होंने जो सामवेद छपवाया है वह भी सूक्ष्मता की ओर झुका हुआ है अर्थात् वह केवल २१६ मन्त्र का है यहां हम यह पूछते हैं कि, कलकत्ता एशियेटिक सुसायटीकी पुस्तकालयमें, एक सौ से अधिक हस्तलिखित सामवेदके पुस्तक विद्यमान हैं और अलवर जयपुर नेपालादि अनेक पुस्तकालयोंमें जब सहस्रों सामवेद की हस्तलिखित पुस्तकें पाई जाती हैं उन सब को छोड़कर क्षुद्र पुस्तकों का सहारा क्यों लिया जाता है। यदि यह कहा जाय कि यह सब पुस्तक जागर्तीके समयके नहीं तो लो और युक्ति कि स्वर्गवासी श्री पं० तुलसीराम जी स्वामिकृत सामवेदके भाष्यमें, महानाम्नी आर्चिक और आरण्यकाध्याय छपा है एवं लाहौरमें विरजानन्द यन्त्रालयमें जो सामवेद छपा है इन सब पुस्तकोंमें दोनों प्रकरण ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। फिर इनसे इनकार क्यों?

मालूम होता है आर्य्यसमाज सम्बन्धी पुस्तक इस लिये प्रमाण

नहीं क्यों कि यदि उनको प्रमाण मान लिया जाय तो फिर वेद सप्त मन्त्री । आकार को कैसे धारण करेगा या यों कहो कि, आर्य्य-समाजके काम को प्रशंसित मान लिया जाय तो फिर अपने लिये रास्ता निकलना दुर्घट हो यायगा, अस्तु ।

यह पुस्तकोंमें छपने ना छपने का टैस्ट सर्वथा युक्ति शून्य है। क्योंकि जव ब्राह्मण ग्रन्थोंमें प्रतीकें धर कर सामवेदकी व्याख्या की है। जिनमें सामवेदके सैकड़ों ही नहीं, किन्तु एक हज़ार मन्त्रसे उपर ऊपर उदाहरण हैं, फिर जूनागढ़के २१६ मन्त्र की कथा मनो घड़न्त नहीं तो क्या है ?

हमारे पास तो इस दूसरे टैस्टके स्थानमें यह टैस्ट है कि, महर्षि पतञ्जलि जीने "अग्ने आयाहि वीतये" इस मन्त्रकी प्रतीक दे कर महाभाष्यमें सामवेदका उदाहरण दिया है और ७० मन्त्रों की संहिता के रचयिताने इसे सामवेदसे निकाल दिया। क्या योगी पतञ्जलि से भी आधुनिक वेद निर्म्माता वढ़कर है।

ऐसा पूछने पर कोई एक इनके चेलेचाटे यह उत्तर देते हैं कि ७० मन्त्रों की सामसंहिताके संस्कर्त्ता उच्च कोटिके विद्वान हैं क्या जाने इन्होंने कुछ समझ कर ही ऐसा किया होगा। हम पूछते हैं कि क्या वेदोंकी ज्ञान वीनमें इन की कोटि महर्षि पतञ्जलि योगिसे भी ऊंची है ? अस्तु ।

अव हम तीसरा टैस्ट जो इन्होंने वेदों को अपनी समझमें निष्कलङ्क वनाने के लिये अवलम्बन किया है, उस की समालोचना करते हैं। कहा यह जाता है कि जो ५ मन्त्र सामवेदके परिशिष्टमें रखे हैं वे घृणोत्पादक हैं। इस लिये सामवेदसे निकाल दिये गए।

'यदि हम यहां यह पूछें कि निकाल दिये गए तो फिर दुवारा

साथ क्यों जोड़ दिये ? इसका उत्तर यह मिलता है कि यह परिशिष्ट हैं अर्थात् शेष भाग बचा हुआ फिर पीछेसे जोड़ दिया गया।

यहां अनन्त प्रकारके प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि, जब यह वेदका शेष है। तो जब वेद घृणोत्पादक नहीं तो यह शेष कैसा। जिसमें घृणा आघुसी ? क्या यज्ञशेष भी कभी दुर्गन्धित देखा गया है। जब यज्ञ की सामग्रीमें शुसन्धि है तो यज्ञशेष भी सुगन्धित होना चाहिये।

यदि यह मान लिया जाय कि इसमें घृणा मनुष्यके हाथोंसे आघुसी तो क्या यह परिशिष्ट पीछे से किसी मनुष्यने जोड़ा है ? यदि मनुष्यने स्वयं रचकर जोड़ा है तो जब आक्षेप्ता मूल वेदको काटता हुआ तनिक मात्र घृणा नहीं करता तो फिर उसने अपने परशुरामी परशासे इसे भी जड़से क्यों न उड़ा दिया ?

मालूम होता है कि वादी, लोगोंकी देखा देखी इन मन्त्रों को परिशिष्टमें तो लिख बैठा पर जब अर्थ भद्दे बने तो आपने इनका नाम घृणोत्पादक रख दिया क्योंकि वादीने उक्त पांच मन्त्रोंके अर्थ इस प्रकार किये हैं कि हमारे शत्रु अन्धे हो जायें जैसे कि सिर कटे सांप होते हैं और हमारे शत्रुओं को गीध खा जायें ठीक है। यदि हाथसे नहीं तो वाणीमात्र से तो शत्रुओंको चकना चूर कर दिया तथास्तु।

मुख्य प्रसङ्ग यह है कि, यह गालियोंका भाण्डार आपके मतमें वेदका परिशिष्ट कैसे कहलाया ? क्योंकि सामवेदका विषय आप योग मानते हैं। फिर गालि प्रदान करके किसी का दिल दुखाना कौनसा योग हुआ ? ऐसा पूछने पर वादी सब को यही उत्तर देते हैं कि इसी लिये तो मैंने इन पाञ्च मन्त्रों को वेदसे बाहर निकाल दिया कि इनका अर्थ घृणित है। फिर यदि यह पूछा जायकि आपतो अथर्व वेदको हिंसा प्रधान सिद्ध करने के लिये।

"यातुधानस्य सोमप, जहि प्रजांनयस्य च ।
निस्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ।"
अथर्व १ । ८ । ३ ।

हे (श्रेष्ठों) आर्य्योंके रक्षक, अथवा सोमके पीनेवाले, इस दुष्ट दस्यु का हनन कर। और इस की प्रजा कों श्रेष्ट मार्गमें ला स्तुति करनेवाले हुए इस दुष्ट की दक्षिण और वाम दोनों आंखें निकाल दे। ऐसे और भी अनेक मन्त्र हैं जो संहिता का आद्योपान्त पाठ करनेसे स्वयं अवगत हो सकते हैं। वेद सर्वस्व पृ० १५।

इत्यादि लेखसे वादीने सारावेद ही घृणांसे भर दिया जो विचारे शत्रु की दोनों आंखे निकाल देनेका उपदेश करता है।

पर जब आपने संहिता का पाठ किया है। और संसितामें ऐसे सहस्रों मन्त्र हैं फिर इन पाञ्च मन्त्रोंने किया अपराध किया था। जो इन विचारोंको निकाल कर वेदबाह्य कर दिया।

हमारे विचारमें तो वादीने उक्त मन्त्रके अर्थों को नहीं समझा अर्थ यह हैं कि, हे परमात्मन् आप अपनी प्रजावों की राक्षसों अर्थात् दुष्ट जनोंसे रक्षा करो। और उन दुष्टों को भी सुशिक्षित करके सीधे मार्गपर ले चलो। और उनपर दया करो।

भला सोचो तो सही यहां दोनों आंखे निकाल देनेका विधान कौन शब्द करता है।

अन्य वात यह है कि वादीने परिशिष्टके अर्थ व्याख्यानके भी माने है यदि व्याख्या भी मानी जाय तब भी योग की व्याख्यामें घृणाका क्या काम ?

सच्च वात तो यह है कि यह भूल संशोधनके लिये परिशिष्ट रूप वनाया पीछेसे मनुष्योंने अपने ग्रन्थोंमें लगाया है। और ईश्वरीय

ग्रन्थोंमें भूल न थी। और नाही उसके संशोधनार्थ पीछेसे परिशिष्ट जोड़ा जाता था।

जो लोग वेदोंके मर्म्मको नहीं समझते वा यों कहो कि जिनके हृदयमें वेदमें भी मनुष्यके भावोंके भर देने की रुचि है उन लोगोंको सर्वत्र परिशिष्ट ही परिशिष्ट सूझता है। क्योंकि सामवेदमें उनकी रायमें आधेसे अधिक परिशिष्ट है वह इसप्रकार कि ५५ मन्त्र आरण्यकाध्याय परिशिष्ट १० महानाम्नी आर्चिक और पांच घृणोत्पादक परिशिष्ट इस प्रकार ७० मन्त्र का सारा सामवेद ७० का परिशिष्ट हुआ।

इतना ही नहीं वादीने एक स्थानमें ब्रह्मादेवानां प्रथमः सम्बभूव मु १। १। १-२। इस मुण्डक को वेद बढानेके लिये प्रमाण मानकर यह सिद्ध किआ है कि अथर्व वेदमें वास्तवमें १० काण्ड हैं अन्य अथर्व ऋषिके मरनेके ५० वर्ष बाद बनाकर लोगोंने मिला दिये फिर यह लिखा है कि यदि इस प्रकार वेदों का बढ़ना माना जाय तो वेद पुस्तक विश्वस्त न रहेगा। यहां हम दश काण्डोंको परिशिष्ट माननेवाले वादीका लेख। ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं ताकि किसी को भी इस विषयमें सन्देह न रहै। "आदि गुरु अथर्वासे लेकर शिष्य प्रशिष्य श्रृङ्खलामें चतुर्थ पुरुष अङ्गिरा तक न्यूनसे न्यून पचास वर्ष रख लिये जायें, तो यह अवशः मानना पड़ता है कि अथर्व वेदका प्रवचन अङ्गिरा ऋषिसे पचास वर्ष पूर्व हो रहा था। ऐसी अवस्थामें अङ्गिराने प्रथम भारद्वाज ऋषिसे अथर्ववेद को पढ़ा और पश्चात् दस काण्ड परिशिष्ट मन्त्रों का संग्रह किया, यह मानना भी कुछ अनुपपन्न नहीं कहा जा सकता। और नाही। पचास ५० वर्ष पीछे संग्रह किए हुए मन्त्रोंका अथर्व वेदमें अन्तर्भाव मानना असंगत समझा जा सकता है। यदि हठात् कोई इन दश काण्ड परिशिष्ट मन्त्रो का अथर्व वेद में अन्तर्भाव।

मानेतो उसको क्रमसे वेदका बढ़ते रहना मानना होगा ऐसी अवस्थामें वेद विश्वस्त पुस्तक नहीं रह सकते वेदसर्वस्व पृं ६२।

यहां तो वेदों का मूलोच्छेद करनेवाले वादीने अथर्व को भी आधा परिशिष्ट वतला दिया और यह भी स्पष्ट कर दिया कि जो मनुष्य रचित वकाया वेदमें मिला दिया जाता है उसका नाम परिशिष्ट है।

और यह भी स्पष्ट दिखला दिया कि हम वेदोंको विश्वस्त वनानेके यत्नमें लगे हुए हैं, तथा अस्तु।

पर हमारी समझमें यहां यह नहीं आया कि अङ्गिरा आदिक ऋषियोंने तो वेद को वढ़ाकर अविश्वस्त वनाया पर आप वाद्या डालनेके आचार्य्य वनकर अर्थात् "सप्तश्लोकी गीताके" समान वेदोंको लघु काय वनानेवाले, लोगोंका विश्वास कैसे वढ़ा रहे हैं। क्योंकि जव वेदोंमें अन्य पाठ मिला देनेसे विश्वास घटता है तो, फिर उनका मूलोच्छेद कर देनेसे क्यों नहीं वटता, अस्तु।

परिशिष्ट की परिभाषाके लिये उक्त स्थल उद्धृत किया गया हमने यहां किसीके खगडनके लिये उक्त प्रकरण नहीं चलाया।

जिस स्थलको हमने यहां पुस्तकान्तरसे उद्धृत किया है उसमें यह भी स्पष्ट रीतिसे कथन किया है कि, अथर्व वेदके पिछले दस कागड अङ्गिरा ऋषिने पीछेसे वनाकर अथर्व वेदमें मिलाए हैं। और इनका नाम अङ्गिरो वेद भी हैं। यह पाञ्चवां वेद वादीने इस नए आविष्कार के समयमें निकाला है। जहां व्यावहारिक साइन्समें इतनी उन्नति हो रही है कि यहां अंग्रज़ी दो संमेरीनोंसे (Submarine) सागरमये जा रहे हैं और आकाशयानोंसे तारामगडलोंके भी भेदन करने की तैयारिओंमें लोग लगे हुए हैं। वहां यदि वादीने वड़ी भारी रिसर्च करके ५ पाञ्चवां अङ्गिरा वेद निकाल लिया तो कोई चिन्ता की वात नहीं।

हमें चिन्ता इस वात की है कि, इससे प्रथम सब ऋषि मुनि भाष्य और टीकाकार पण्डित इस वेद मन्त्र को चारो वेदों के वर्णनमें लगाया करते थे कि उक्त परमात्मासे ऋग्, यजु, साम, अथर्व, यह चारों वेद प्रकट हुए, वह पूरा मन्त्र यह है कि

"यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् ॥
स्कम्भं तं ब्रूहिकतमः स्विदेव सः । अथर्व, का, १० अनु ४, मं० २० ।

भावार्थ, इस मन्त्रका पूर्व प्रकाशित कर दिया गया है। दिखलाना यह है कि, अब यह मन्त्र चारोंवेदोंकी सिद्धिमें प्रमाण नहीं रहा। क्योंकि आजकलके नए वैदिक आविष्कारने इसको अङ्गिरा वेदका मन्त्र वतलाया है कि यह मन्त्र पाञ्चवें अंगिरा वेदका है और वह पाञ्चवां वेद अथर्व वेदका परिशिष्ट है यहां यदि वादीसे यह पूछा जाय कि क्या परिशिष्ट प्रमाण नहीं? तो वादी यह उत्तर देगा कि यों तो परिशिष्ट भी प्रमाण होता है। पर इस मन्त्रके अर्थ चारवेद सिद्ध नहीं करते किन्तु पाञ्च वेदसिद्ध करते हैं वह इस प्रकार कि अथर्वांगिरसके अर्थ अथर्व वेद। और अंगिरा वेद हैं,अर्थात् अथर्व वेद और आंगिरस वेद यह दोनों मिलकर ही उस परमात्माके मुख हैं अकेला अथर्व वेद नहीं।

यह अर्थ यों तो सबसे नए हैं। पर वैदिक साहित्यमें इन अर्थोंका कहीं गन्ध भी नहीं पाया जाता। देखो निरुक्त ११। १७ में अंगिरसके अर्थ विज्ञानियोंके हैं सायणभाष्यमें अथर्वांगिरसके अर्थ अंगिरा ऋषि पर प्रकट हुए अथर्व वेदके हैं।

बहुत क्या जहां जहां अथर्वांगिरसः यह शब्द आता है वहां सर्वत्र

इसके अर्थ अंगिरा ऋषि द्वारा प्रकट हुए अथर्ववेदके ही हैं। अथर्व और अंगिरो इन दोनों वेदोंके कहीं भी नहीं। होते भी कैसे जब अंगिरो वेदका नाम निशान ही नहीं था। इसके जन्मदाता तो वैदिक धर्म्मके द्वितीयाचार्य्य अपने आपको ही मानते हैं। अस्तु। पर मालूम यह होता है कि यह अर्थ इनको ग्रिफतसाहब की अथर्ववेद की भूमिका सुनकर सूझे हैं यदि पहले सूझ जाते तो वेदान्त वृत्ति पृ० ४५।

सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। इसके अर्थ करते हुए उक्त मन्त्रसे चारवेद सिद्ध कदापि न करते और न यह लिखते कि

मन्त्राणां चैवं चतुर्धा विभिन्नत्वात् भगवान् वेदोऽपि चतुर्धा विभिद्यते। ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद इति। तत्र ऋचां ऋग्वेदः यजुषां यजुर्वेदः साम्नां सामवेदः अथर्वाङ्गिरसां चाथर्ववेद इति संज्ञेत्यवगन्तव्यम्।

इन मन्त्रोंके चार प्रकारसे भिन्न हो जानेके कारण भगवान् वेद भी चार प्रकारसे भेदको प्राप्त हो गया यहां ऋचायोंकी ऋग्वेद-संज्ञा हुई और यजुः मन्त्रो को यजुः संज्ञा हुई। साममन्त्रों की सामवेद संज्ञा हुई और अथर्वांगिरसों की अथर्ववेद संज्ञा हुई।

यहां तो अथर्वांगिरसोंके अर्थ वादीने अकेला अथर्ववेद ही किये।

अधिक क्या यदि वादीको यहां इतना भी ज्ञान होता कि "अथर्वाङ्गिरसो मुखम्" यह मन्त्र अंगिरो वेदका है तो इस अप्रामाणिक मन्त्र को लिखकर वादी अपनी वृत्तिको अप्रामाणिक कदापि सिद्ध न करता।

यहां यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि अंगिरोवेदवादी, या

यों कहो कि पञ्चम वेद्वादीको जब कभी अपने लेखों की सच्चाईका अभिमान हुआ करे तो अपनी पूर्वोक्त भूलोंपर दृष्टि डाला करे।

इस पञ्चमवेदका इतिहास यों वर्णन किया जाता है कि ब्रह्म पहले अकेला था। उसने दूसरे देवको उत्पन्न करना चाहा। इस लिये घोर तप किया तपसे उसके (स्वेद) पसीने की धारें वह निकलीं उन धारोंके जलाशयमें जब ब्रह्मने अपने ही प्रतिविम्बको देखा तो "ब्रह्मका वीर्य्यपात हो गया। उस वीर्य्यसे स्वेद रूपी जलोंके दो भाग हो गए; एक खारा और एक मीठा, उस मीठे भागमें वीर्य्यके पक जानेसे "भृगु" ऋषि उत्पन्न हुआ। भृगु को उत्पन्न करके ब्रह्मतो छिप गया पर भृगु इधर उधर अकेला देखने लगा इतनेमें। आकाशवाणी हुई कि तूं इन जलोंके नीचे ढूंड ज्यों ही उसने नीचे देखा तो अथर्वा ऋषि उत्पन्न हो गया'। और वह अथर्वा ज्यों का त्यों हाथ पायोंकी वनावटमें ब्रह्मके सादृश्य था। फिर उस अथर्वा को ब्रह्मने कहा कि, तुम प्रजा उत्पन्न करो बस ब्रह्मके इतने कथन मात्रसे वह अथर्वा प्रजापति वन गया। इस प्रजापतिसे दस ऋचायोंवाले दस ऋषि उत्पन्न हुए। इन दसोंसे फिर दस और ऋषि उत्पन्न हुए। इन वीस ऋषियोंने जो वेदका भाग देखा उसका नाम अथर्ववेद। और दूसरी ओर खारे जलसे अंगिरा ऋषि उत्पन्न हुआ उससे भी पूर्वो प्रकारसे वीस ऋषि उत्पन्न हुए। उनसे अंगिरो वेद बना।

अंगिरो वेद की उत्पत्तिका यह इतिहास वेद सर्वस्व पुस्तकके ८८ और ८७ पृष्ठ पर है।

यहां समालोचनीय विषय यह है कि यों तो ग्रन्थकर्त्ताके मतमें अंगिरो वेद और अथर्ववेद दोनों वेद मिलकर वीस वीस ऋषियोंने वनाए हैं, पर अंगिरो वेदको इस हेतुसे परिशिष्ट माना है कि यह

खारे जलसे उत्पन्न हुए अंगिरस ऋषिकी सन्तानने बनाया है। और अथर्ववेद मधुर जलसे उत्पन्न हुए अथर्वा ऋषिकी सन्तानने बनाया है। इस लिये यह पहले १० काण्ड शुद्ध और असली वेद हैं। यहां आश्चर्य्यजनक बात यह प्रतीत होती है कि, "अथर्वाङ्गिरसो मुखम्" यह मन्त्र भी परिशिष्ट वादीके मतमें किसीने अथर्ववेदमें मिला दिया, कारण यह कि उक्त मन्त्र अथर्वके पहले १० काण्डोमें पाया जाता है, अस्तु।

इसको निकाल कर परिशिष्टमें फेकने की तो हमें चिन्ता बाधित नहीं करती जैसी कि

> "यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
> निस्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥"
>
> अथर्व १ । ८ । ३ ।

इस मन्त्रके शुद्ध वेद अर्थात् असली अथर्ववेदमें रहने की चिन्ता चिताग्निके समान हमको सताती है कि जब परिशिष्ट वादीने साम-वेदके अन्तके पांच मन्त्रों को इस लिये परिशिष्ट बना दिया कि उनके घृणित अर्थ हैं तो फिर उक्त मन्त्रके अर्थ भी तो दुष्मन की दोनों आंखे निकालना है फिर यह मन्त्र परिशिष्टमें कैसे नहीं जायगा? अस्तु।

मुख्य प्रसङ्ग यहां अंगिरोवेदके परिशिष्ट होने का है इसके परि-शिष्ट होनेमें परिशिष्ट वादीने प्रबल युक्ति यह दी है कि, यह आदि गुरु अथर्वा ऋषिको नहीं मिला किन्तु अंगिरस ऋषि द्वारा बनाया गया है।

अथर्वा ऋषिको वेद परमात्माने सबसे प्रथम दिया इस विषयमें वादी यह प्रमाण देते हैं कि,

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥

मु १ । १ । १ । २ ।

अथर्वा ऋषिको सबसे पहले परमात्माने अथर्व वेद दिया इस लिये अथर्वा को आदि गुरु माना है ।

पहली चौकड़ी तो वादी यहां यह भूल गया कि जब आदिगुरु अथर्वा है और अथर्व वेद सबसे प्रथम है तो ऋग्वेदके मन्त्र अन्य वेदोंमें उद्धृत किये गए इस मानने की क्या आवश्यकता थी । किन्तु यह मानना चाहिये था कि, अथर्व वेदसे अन्य वेदोंमें मन्त्र गए, क्योंकि प्रथम अथर्व ज्येष्ठ पुत्रको ही परमात्माने वेदका ज्ञान दिया था ।

यदि वादी यह माने कि ब्रह्मविद्याके कर्ता ऋषियोंमें अथर्वा सबसे ज्येष्ठ पुत्र था तो फिर आदि गुरु कैसे ?

और जो वादीने अंगिरा ऋषि द्वारा अथर्व वेद प्रकाशित नहीं किया गया इस विषयमें महर्षि स्वामी दयानन्द जीके मत को खण्डन करते हुए यह लिखा है कि,

"अध्यापयामास पितृन् शिशुराङ्गिरसः कविः ।"

मनु २ । १५१ ।

इस श्लोकमें वेदवाणीका नाम नहीं इस लिये यह श्लोक अंगिरा ऋषिपर वेद प्रकट होना सिद्ध नहीं करता। तो "ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव" यहां वेदोंका कथन कहां है? प्रत्युत यहां तो ब्रह्मविद्याका कथन है । जो उपनिषद् शास्त्रमें प्रसिद्ध है ।

वास्तवमें उक्त श्लोकके यह अर्थ है कि, उपनिषत्कार ऋषियोंमें

एक ब्रह्मा नाम ऋषि सबसे प्रथम हुआ उसने अपने बड़े लड़के अथर्वा को सबसे पहले ब्रह्मविद्या पढ़ाई ।

यहां वादी यह कहेगा कि ब्रह्माको यहां सृष्टि कर्ता लिखा है वह कैसे ? तो उत्तर यह है कि, अथर्वा को ब्रह्माका पुत्र लिखा है। ईश्वर पक्षमें वह कैसे ? ऐसा पूछने पर वादी यही कहेगा कि पुत्र कहना उपचारसे है। अर्थात् सभी परमात्माके पुत्र हैं। इस अभिप्रायसे पुत्र है, मुख्य नहीं तो फिर हम भी तो यही कहते हैं कि, "विश्वस्य कर्त्ता" यह कथन मुख्य नहीं, किन्तु गौण है : अर्थात् अपनी शुभ शिक्षा द्वारा सृष्टि को सुन्दर बनानेके अभिप्रायसे यहां सृष्टि कर्त्ता कथन किया गया है वास्तवमें नहीं। और इसी प्रकार उपनिषदोंके कई एक स्थलोंमें जीवको सर्वकर्त्ता कहा है।

हमारे पक्षमें प्रबल युक्ति यह भी है कि उक्त श्लोकके आगे उपनिषद्में अथर्वासे उत्पन्न हुए वंशका वर्णन है, इस लिये ब्रह्मा मनुष्य ही लिया जा सकता है, ईश्वर नहीं।

और जो यह कहा गया है कि, मनुके श्लोकमें वेदका वर्णन नहीं लिखा, इसके विषयमें तो आक्षेप्ताने स्वयं ताण्ड्य ब्राह्मणका यह पाठ उद्धृत किया है कि,

> "शिशुराङ्गिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत् ।"
>
> ताण्ड्य० ब्रा० ११ । ३ । १४ ।

अंगिरा ऋषि छोटी उमरमें ही मन्त्रार्थ जाननेवाला हुआ इस श्लोकके वादीने मनुके उक्त श्लोकका आधार बतलाया है। जिस श्लोकसे स्वामि दयानन्दने अंगिरा ऋषि द्वारा अथर्व वेद प्रकट होना माना है। प्रमाणके लिये देखो वे० सं० पृ० ६३ ।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि अथर्व वेद अंगिरा ऋषि द्वारा प्रकट हुआ है, अथर्व द्वारा नहीं।

अन्य प्रवल युक्ति यह है कि जब ऋग्, यजुः, साम, इन तीनों वेदोंका नाम किसी ऋषिके नाम पर नहीं तो अथर्व का नाम ऋषिके नाम पर कैसे?

ऋक्के, अर्थ पदार्थोंके गुण वर्णन करना। यजुःके अर्थ यज्ञ करना। सामके अर्थ ज्ञान और कर्म्म द्वारा दीर्घ विचार करना। जब इस प्रकार अन्य वेदोंके नामोंमें किसी ऋषिके नाम का गन्ध भी नहीं तो फिर अथर्व वेदका अथर्वा ऋषि पर नाम रखनेवालेके पास क्या युक्ति है?

यों तो वादी इतनी दूरका रिश्ता जोड लिया करता है कि ऋग्वेदके १० मण्डल हैं। इसलिये अथर्वके भी १० काण्ड होने चाहिये। फिर चारों वेदोंके नाममें उच्छृङ्खलता क्यों? कि तीन वेदोंके नाम तो ऋषियोंके नामोपर नहीं फिर चौथेका नाम ऋषिपर इतनी फेरफार क्यों?

एवं अथर्वके अर्थ न (थर्व) अथर्व इस प्रकार नञ् समाससे अथर्वके अर्थ अहिंसाके हैं, अर्थात् जो रक्षक वेद हो वह अथर्व। लोकमें भी नीति और चिकित्सा ही भली भान्ति रक्षा करती है। इस प्रकार वादिके अभिमत अर्थ को भी अथर्वका अर्थ मण्डन करना है कि जिसमें नीतिविद्या और चिकित्साविद्या भरी हो उसका नाम अथर्व है, अस्तु।

प्रसङ्ग सङ्गतिसे अथर्व वेदके मुख्यार्थका मण्डन किया गया। मुख्य प्रसङ्ग यह है कि अथर्व वेदका कोई परिशिष्ट नहीं और नाही कोई सामवेदमें परिशिष्ट है? जिन पाञ्च मन्त्रोंको परिशिष्ट वादीने परिशिष्ट बतलाया है। वह मूल वेदके मन्त्र हैं, प्रमाणके लिये

देखो पुस्तकशाला अलवर नं० २३२। और एशीएटिक सोसायटी।

तथा जीवानन्द विद्यासागर का छपाया हुआ वेद इन सबमें सामवेदके वह पांच मन्त्र सामवेदमें हैं। परिशिष्ट नहीं।

जो यह कहा जाता है कि इनके अर्थ घृणित हैं, यह कथन सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि यह मन्त्र कामादि पापोंके नाशका। अभिप्राय रखते हैं। इनका कोई अन्य ईर्षा द्वेषका अभिप्राय नहीं यदि ऐसे मन्त्र विना सोचे समझे व यों कहो कि अपनी तुच्छ बुद्धिसे इनके घृणित अर्थ समझ कर निकाल दिये जायंगे तो—

"अमित्रायुधः मरुतामिव प्रयाःप्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः।" ऋ० अष्टक ३। अध्याय १। वर्ग ३४। अमित्रहा ऋ ६-७-३७ इत्यादि सहस्रों—

मन्त्र वेदोंसे निकाले जायंगे। हमारे विचारमें तो दुष्ट दस्यु अन्यायकारी दुराचारी शत्रुयोंके मारनेका उपदेश देनेसे वेद दूषित नहीं होता और ऐसा वादीने भी अपने सुपूरामूयकाञ्जलि के समान वेद के सत्तर मन्त्रोंमें भी माना है। देखो मन्त्र, २७में दुष्मनोंके मारनेकी प्रार्थना कैसे ज़ोरसे की गई है और दोनों आंखे निकाल देनेवाले इनके अथर्व मन्त्र को भी स्मरण करो तब घृणित अघृणित अर्थोंका पता लगेगा। फिर वादी किस युक्तिसे ५ मन्त्रोंके अर्थोंको घृणित बतलाता है।

और हमारे विचारमें तो जिस मन्त्रके अर्थसे इनको घृणतार्थकी शङ्का हुई है, वह कामादि शत्रुयोंको निःशक्त करनेके अभिप्रायसे आया है जैसा कि गीतामें "विद्धेयनमिह वैरिणं" यह वाक्य कामके शत्रुभावको वर्णन करता है। कि—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। गी ३। ३७।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ गी ३। ४१।

जो क्रोधादि चार शत्रुओंका मूलभूत यह कामरूपि शत्रु है यह ज्ञानी पुरुषोंका सदासे वैरि है। हे अर्जुन तुम सबसे प्रथम इस पाप पिशाचरूपी काम शत्रुको सबसे प्रथम हनन करो। गीताके उक्त श्लोकमें यह भाव भी उसी मन्त्रसे लिया गया है जिसको वादी घृणित बनाकर परिशिष्ट बनाता है। वह मन्त्र यह है कि—

अन्धा अमित्रा भवता शीर्पाणोऽहय इव। तेषां वो अग्नि तुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्। ६। सू० १। मं० २।

हे परमात्मन् हमारे कामादि शत्रु निर्विष सांपोंके समान हो जांय ता कि हम को किसी प्रकार भी हानि न पहुंचा सकें, देखो इस मन्त्रका कैसा उत्तम भाव था जिस को अल्पश्रुतवादीने न समझ कर वेदके उच्च आसनसे गिरा कर निन्दित बना दिया,।

कारण यह प्रतीत होता है कि "अशीर्पाणोऽहय इव" इस पदके अर्थको न समझकर इसके अर्थ सिर कटे सांपोके समान अन्धोंके कर डाले हैं। मानो सिर सहित सांप कभी अन्धे ही नहीं होते इन की दृष्टीमें सांप जब अन्धे होते हैं तो सिर काटनेसे ही होते हैं। इस हेतु हेतुमद्भावमें तो वादीने बिआलोजीके प्रोफेसरोंको भी नीचा दिखला दिया, अस्तु।

प्रकृत यह है कि सामवेदमें कोई स्थल भी प्रक्षिप्त व परिशिष्ट नहीं।

जो यह कहा जाता है कि आरण्यकाध्याय को जीवानन्द विद्या-सागरने इसी कारणसे पृथक् छापा है कि, वह प्रक्षिप्त था और जीवानन्द जीने इसी कारणसे उसे निकाल दिया। इस का उत्तर

यह है कि, जिनके मतमें पुनरुक्तिरूपी करालकाली सदैव खप्पर ले कर वेदोंके भक्षण करनेके लिये तैयार है। उनको जीवानन्द की शरण ले कर जीनेका सहारा ढूंडना सर्वथा निष्फल है, क्योंकि आरण्यकाध्यायके कई एक मन्त्र ज्यों के त्यों ऋग्वेदमें आचुके हैं, केवल कहीं एक पद वा कहीं, दो पदोंका भेद है। इस लिये, उन्हे पुनरुक्तिका कलङ्क लगाकर ही निकाल देना था अधिक प्रयास की क्या आवश्यकता थी। यदि यह कहा जाय कि किसी एक आधे पदके नये आजानेसे भी, मन्त्र ज्यों का त्यों नया हो जाता है तो पुरुषसूक्तको अन्य वेदोंसे निकालने की क्या आवश्यकता थी। क्योंकि उसमें भी किसी न किसी शब्दका भेद तो स्पष्ट ही है।

यह बात इस प्रकार स्फुट है कि जिस प्रकार सहस्रशीर्षा पुरुषः में एक शब्दका भेद है इसी प्रकार, आरण्यकाध्यायके प्रथम दो मन्त्रों में भी एक दो शब्दों का ही भेद है विशेष भेद नहीं।

यहां यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि, पुनरुक्तिवादियोंने जिस पुरुषसूक्तको सामवेदसे निकालकर बाहर किया है वह,ज्यों का त्यों इस आरण्यकाध्यायमें आता है। आशय यह है कि,यदि आरण्यकाध्याय सामसंहिका पाठ न माना जाय तो, चारों वेदोंमें पुरुषसूक्त है। यह कथन भी निर्म्मूल हो जायगा। केवल इतना ही नहीं किन्तु पुनरुक्तिवादीने अनेक स्थलोंमें पुरुषसूक्त का चारों वेदोंमें याज्ञिकों की ओरसे प्रक्षिप्त होना स्वीकार किया है।

सार यह निकाला कि पुनरुक्तिदोषके सहारेसे वादी अरण्यकाध्यायको प्रक्षिप्त कर सकता था फिर झूठ मूठ विद्यासागरका सहारा क्यों लिया।

यदि यह कहा जाय कि इस आरण्यकाध्याय को जड़से उड़ा देनेके लिये विद्यासागर का सहारा लिया है तो उत्तर यह है कि जीवानन्द ने तो इसके ऊपर आरण्य संहिता लिखा है जब आरण्यका-

ध्याय संहिता है ! तो फिर प्रक्षिप्त कैसे ? यहां वादी इस बातका सहारा लेता है कि इस को भिन्न छापने का क्या प्रयोजन था ? यदि यह सामसंहिता का पाठ था तो पृथक् क्यों छापा ? इसका उत्तर यह है कि, जब यजुर्वेद का १६वां रुद्राध्याय यजुःसंहिता का पाठ है तो फिर वह रुद्री नामसे पृथक् क्यों छापा जाता है ? इस युक्तिसे स्पष्ट हो जाता है कि, संहिताके कई एक स्थल भिन्न करके इस अभिप्रायसे छाप दिये जाते हैं कि लोग उन्हे सुगमतासे पढ लें।

अन्य युक्ति यह है कि जितने हस्तलिखित सामवेदके पुस्तक मिलते हैं उन सबमें आरण्यकाध्याय लिखा हुआ है। जैसा कि हम पूर्व स्पष्ट दिखला आए हैं।

यहां यह दिखलाना था कि पं० जीवानन्द जीने जो आरण्य-संहिता करके छापी है उसपर सायण भाष्य है। जिस सायणको वादी सुधामयी सुदृष्टिसे देखता है। उसका यहां निम्नलिखित लेख उद्धृत किया जाता है।

आरण्यकाभिधः षष्ठोऽध्यायः व्याक्रियतेऽधुना ।

अब षष्ठे अध्यायका व्याख्यान किया जाता है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि सायणाचार्य्यके मतमें यह अध्याय सामवेद का छठा अध्याय है, किसी अन्य का नहीं।

यदि वादीसे भी पूछा जाय कि यह किसका छठा अध्याय कहा है तो वादी भी यही उत्तर देगा कि यह सामवेदका छठा अध्याय है फिर झगडा किस बात का यदि कहा जाय कि पृथक करके छाप देनेसे यह सामवेद नहीं रहा तो उत्तर यह है कि क्या सामवेदके जो पाञ्च मन्त्रवादीने पृथक करके छापे हैं वे अब सामवेद नहीं रहे ? यह युक्ति सर्वथा विड़म्बना मात्र है क्या, पृथक् करके छापदेनेसे कोई स्थल प्रक्षिप्त हो सकता है।

हां यदि पं० जीवानन्द विद्यासागर वेदोंमें मिलावट माननेवालेके समान स्पष्ट यह लिख देता कि, यह स्थल हमने पृथक करके इस अभिप्रायसे छापा है कि यह सामवेदका परिशिष्ट है ।

वादी किसी याज्ञिकने मिला दिया था, हमने रिसर्च करके पृथक् कर दिया, तब वादीकी युक्ति कुछ मूल्य रख सकती थी । अब तो उलटा चारों वेदों को शुद्ध पवित्र और सर्वथा निर्भ्रान्त माननेवालोंके मत की पोषक है ।

क्यों कि रुद्रीके समान संहिता का अवयव होनेसे इस का नाम संहिता है ।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मुख्यतया चारोंवेदोंका नाम संहिता है । जो लोग यह कहते हैं कि, संहितायोंमें पाठभेद है । उन को यह भी सोच लेना चाहिये कि, शाखाभेदसे जो पुस्तक पृथक् करके छाप दिये जाते हैं, उनके पाठभेद मात्रसे वेदोंमें कदापि पाठ-भेद नहीं माना जा सकता ।

इसी अभिप्रायसे महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्ती जीने यह माना है कि शाखा मूल वेद नहीं, किन्तु वेदोंके व्याख्या हैं न केवल स्वामी दयानन्द जी यह कथन करते हैं, किन्तु सायणाचार्य्य भी स्पष्ट अपनी भूमिकामें यह लिखते हैं कि—

मन्त्रेषु पाठभेदः शाखाभेदेन पृ० ७ पैरा ३—

जो वेदोंमें पाठभेद की आशङ्का होती है वह शाखाभेदसे है, मन्त्र संहितायोंमें नहीं ॥

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धायां वेदमर्य्यादायां
द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।

——*——

ओ३म् ।

अथ वेदमर्य्यादायाः

उत्तरार्द्धम् ।
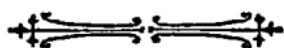
अब शाखा शब्दका विचार करते हैं कि, शाखाके अवयवार्थ भी इसी बातको सिद्ध करतें हैं कि जो मूल को प्राप्त हो उसको शाखा कहते हैं शाखति मूलं प्राप्नोतीति शखा, इस व्युत्पत्तिसे स्पष्ट सिद्ध है कि शाखा मूल कदापि नहीं हो सक्ता। हां! शाखा अपने मूलोद्भव सम्बन्धसे मूलमें सङ्गत समझी जाती है मूल नहीं। लोकोक्ति प्रमाण भी इसी बातको सिद्ध करते हैं।

कि शाखा नाम भाग का है। सम्पूर्ण का नहीं, फिर कैसे कहा जाता है कि संहिताओंका नाम ही शाखा है।

और जो लोग शाकलादि शाखाओंको देखकर इस भ्रममें पड़जाते हैं कि शाकल, वाष्कल, यह दो प्रकार की संहिता जो मिलती हैं इससे संहिता को ही शाखा समझना चाहिये।

इसका उत्तर यह है कि इन दो प्रकार की संहिताओंपर भी जो शाकल, वाष्पकल की रीतिसे अष्टक, अध्याय, और वर्ग, दूसरी ओर मण्डल, अनुवाक, और सूक्तका भेद है। तथा कहीं कहीं पाठभेद भी है इसी कारण इन को भी शाखा कह सकते हैं, कि इनमें भी दोनों प्रकारोंसे एक तरह वेद का व्याख्यानही किया गया है, अर्थात् वेदके स्थलों को भिन्न भिन्न किया है इससे इन को शाखा कहा है।

वास्तवमें संहिता और शाखा का अत्यन्त्य भेद है अर्थात् शाखा एक भाग और संहिता वृक्षमूल के समान सब शाखायोंका आधार होती है ।

शाखायोंको ही मन्त्र संहिता माननेवालोंके मतमें यह बड़ा भारी दोष है कि वेद प्राचीन नहीं रहते किन्तु अन्य भारतादि पुस्तकोंके समान नवीन सिद्ध हो जाते हैं ।

वह इस प्रकार कि वेदसर्वस्वके पृष्ठ ५३ पर यह लिखा है कि वाष्कल सूक्त क्रमके अनुसार वहुतसे सूक्तों का प्रवक्ता दीर्घतमा ऋृषि माना है ।

और दीर्घतमा का वर्णन महाभारतमें आया है तो क्या दीर्घतमादि ऋृषियोंके प्रथम मन्त्र संहिता न थी ? यह किसी की समझमें भी नहीं असक्ता कि शाकल वाष्कल के प्रथम वेदसंहिताएं न थीं । यदि वास्तवमें ऐसा ही है कि शाकलादि ही संहितायोंके प्रवक्ता हैं तो वेद प्राचीन कैसे ? क्योंकि शाकलादि तो दीर्घतमादिसे चार पाञ्च पीढ़ी ही पहलेथे वहुत नहीं ।

यहां यह वात भी स्मरण रखने योग्य है कि शाखाको वेद माननेवाला वादी कभी कभी यह कह कर भी अपने भाव को पलट दिया करता है कि प्रवक्ता नाम प्रकाशक का है निर्माता का नहीं । यह कथन सर्वथा मिथ्या है । देखो न्यायवृत्ति पुनरुक्ति वाद पृ० ९६ पर यहां निर्माता को प्रवक्ता माना है, अस्तु ।

प्रसङ्ग यह है कि शाखा ही वेद हैं तो प्राचीन वेद कहा हैं ? हमारे विचारमें शाखा वेद नहीं । इसी अभिप्रायसे सायणाचार्य्यने शाखायोंमें पाठभेद माना है मन्त्र संहिताओंमें नहीं ।

और जो वादीने जूनागढ़ की छपी हुई सामवेदकी पुस्तकमें केवल २१९ उन्नीस मन्त्र बतलाएं हैं वह भी शाखा है अन्यथा १८७३ मन्त्रोंके स्थानमें केवल २१९ मन्त्रों का रखना कब सम्भव हो सकता था। अस्तु।

सार यह है कि संहिताओंमें पाठ भेद नहीं पाठभेद केवल शाखाओंमें है जैसा कि गान शाखावाले सामवेद का उदाहरण दे कर पूर्व लिख आए हैं कि यहां पाठ भेद शाखा के कारण है संहिता नाम इसका गौण है मुख्य नहीं इस विषय को हम आगे विस्तार पूर्वक निरूपण करेंगे यहां अन्य प्रमाण इस विषय में यह है कि वलायतमें जो मैक्समूलरने वेद छापा है उसकी भूमिकामें भी यह लिखा है कि संहिताओंमें जो पाठ भेद पाया जाता है वह लेखकों की भूलसे है वास्तवमें नहीं इससे स्पष्ट सिद्ध है कि संहिताओंमें पाठभेदनहीं यदि कोई यह आशङ्का करे कि फिर शुद्ध वेदोंका निर्णय कैसे किया जाय।

इस का उत्तर यह है कि जब अभी तक सहस्रों लोग भारत-वर्षमें ऐसे हैं कि जिनके संहिताएं परम्परासे कण्ठ चली आती हैं तो फिर इस विषयमें क्या अनुपपत्ति हो सकती है।

क्यों कि लेखकों की भूलें पुस्तकान्तरों तथा कण्ठस्थ पाठों के मिलानेसे दूर हो सकती हैं इसी अभिप्रायसे वैदिक अनुसन्धान करता। मैक्समूलरभट्ट प्रभृति विद्वानोंने इस त्रुटिसे वेदों की संहिताओंको अप्रमाण नहीं ठहराया हमतो इससे बढ़कर अन्य प्रबल प्रमाण भी रखते हैं। जिससे वेदोंमें कोई पाठभेद व संख्याभेद नहीं पाया जाता वह यह है कि जहां जहां वेदोंके हस्त-लिखित प्राचीन पुस्तक मिलते हैं उनमें न कोई संख्या भेद और

न कोई पाठभेद है फिर वेदपाठ भेद व संख्याभेदसे दूषित कैसे प्रमाण के लिये देखो राजलायवरेरी अलवर नं० ३१। तथा एशिऐटिकसुसायटीमें इन पुस्तकों पर कोई शाखा भेद लिखाहुआ नहीं अब बतलाइये कि शाखा भेद और पाठ भेदसे वेदोंको दूषित करने वालों के पास कौनसी पूञ्जी है जिससे वे वेदोंका भावघटाकर उन्हे दूषित करने पर कटि बद्ध हैं इसी प्रसङ्गमें हम उनको भी चेतावनी देते हैं कि जो यह कहते हैं कि आर्य्यसमाजिओंके वेद कहां है? अर्थात् जो जो वेद पुस्तक मिलते हैं वे शाखा रूप में ही मिलते हैं और आर्य्यसमाजके प्रवर्त्तक महर्षिदयानन्द का यह मन्तव्य है कि शाखा वेदनहीं।

इसका यह उत्तर है कि शाखा से भिन्न वेदसंहिताओंको मानने वालोंके लिये तो परंपरासे प्राप्त कण्ठस्थ वेदपाठ भी व्यवस्थाकर देते हैं और हस्त लिखत मन्त्र संहिताओंसे भी वेदपुस्तकोंका निर्धारण हो जायगा पर जो केवल शाखाओंको ही वेद मानते हैं उनके पास अब क्या प्रमाण है कि जब शाखा-ओंका परस्पर भेद मानकर वेदोंमें छांट शुरु हो गई तो अब किस शाखाको प्रमाण और किस शाखाको अप्रमाण माना जायगा? यहां यह कथन करना भी कुछ अत्युक्ति नहीं कि एक मात्र वेदोंको अखण्डनीय सिद्ध करने वाला आचार्य्य महर्षि दयानन्दही हुआ है उक्त महर्षिका यह मन्तव्य है कि वेद संहिता शाखानहीं शाखा व्याख्यानरूप व मनुष्यंके बनाये हुए पुस्तकोंका नाम है ईश्वरीय वेदमें शाखा भेद नहीं

वेदमर्य्यादाके लिये इस मन्तव्यका मानना प्रत्येक वैदिक धर्म्मीका कर्त्तव्य है ।

यहां यह भी स्मरण रखने योग्य है कि जो वैदिक सिद्धान्तोका आभास दिखलाकर यह सिद्ध करते हैं कि सामवेदमें महानाम्नी आर्चिक पीछेसे मिलायागया है। और वास्तव में उसके तीन ही मन्त्र हैं उपसर्गोंको बढ़ा कर अब दस बनालिये गए। यह कथन सर्वथा मिथ्या है क्योंकि महानाम्नी आर्चिक आरण्यकाध्याय के अन्तके दस मन्त्रों का नाम है महानाम्नी इस नामका कारण यह है कि सर्वोपरिनाम वाले परमात्मा का इन दस मन्त्रोंमें वर्णन है इसलिये इनको महानाम्नी आर्चिकके नामसे कथनकियागया है वैदीक ऋचाओंमें व्याख्यान भागका नाम आर्चिक है। यह एक दस मन्त्रोवाले ब्रह्मवर्णक सूक्तका पुरुष सूक्तके समान नाम विशेष है इस प्रकार यह प्रकरण पूर्वार्चिकसे भिन्न नहीं।

कई एक लोग यहां यह आशङ्का करते हैं कि यदि महनाम्नी आर्चिक सामवेदमें माना जाय तो तीन आर्चिक मानने पड़ेंगे, एक पूर्वार्चिक, और दूसरा महानाम्नी आर्चिक, तीसरा उत्तरार्चिक, और साममें दो ही आर्चिक सर्वसम्मत हैं तीन नहीं इसलिये महानाम्नी आर्चिकको सामवेदसे निकाल देना चाहिये।

इसका उत्तर यह है कि पूर्वार्चिकमें कई एक प्रकरण हैं जैसेकि ऐन्द्र, आग्नेय, पावमान, एवं महानाम्नी यह भी एक प्रकारका प्रकरण है। फिर विचारे दस मन्त्रोंके रखनेसे तीसरी संहिता कैसे बन जाती है क्योंकि जब पूर्वके आग्नेयादि प्रकरणोंसे संहितामें भेद न हुआ तो इस अकेले प्रकरण

से संहितामें भेद कैसे हो जायगा ? अन्य प्रमाण यह है कि महानाम्नी आर्चिक, पूर्वार्चिकका उपसंहार है इसमें (भूमा) नाम केसमान, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मके नामों का वर्णन है इस प्रकरणके अन्तिम मन्त्र में उक्त नामों से प्रार्थना करके उपसंहार किया है।

या यों कहोकि "एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्त्यग्निं" ऋ १ । मं सू० । १६४ । मं० ४६ के अनुसार ब्रह्मके नामोंसे इस प्रकरणका उपसंहार किया गया है।

और "जोता ऊर्ध्वासीम्नोऽभ्यसृजत । तत् सिमा अभवन् तत् सिमानां सिमत्त्वम् । ए० ब्रा० २२।२३ इसके यह अर्थ किए हैं कि महानाम्नी आर्चिक वेदकी सीमाके वाह्य है। यह वादी की हस्तलाघवता है। अर्थ यह है कि वे सीमाके ऊपर बनाए गए और वही सीमा ठहरी तात्पर्य्य यह है कि महानाम्नी मन्त्र पूर्वार्चिक की सीमाका अन्त हैं अर्थात् उपसंहारके मन्त्र हैं इन्हीसे पूर्वार्चिक की सीमा स्थिर हुई यहां निकाल देने वा परिशिष्ट बनादेने का कथन कहां है ?

परजिनके मतमें अर्थ वदल कर सन्देहमें डालना पुण्य है उनसे क्या कहा जाय।

मालम यह होता है कि परिशिष्ट वादीका निजमत वेद की लाघवताकी ओर इतना झुका हुआ है कि जैसे वैयाकरणलोग अर्द्धमात्राकी लाघवता को पुत्रोत्सव के समान समझते हैं एवं यह भी वेदके घटानको एक महोत्सव समझते हैं।

अन्यथा जब महानाम्नी मन्त्रोंका ब्राह्मण ग्रन्थोंमें व्याख्यान है तोफिर यह सामसंहिताका अङ्ग कैसे नहीं ।

और ऐसे सुन्द्र वेदाङ्गोको भङ्ग करनेसे वेदहत्याका दोष-क्यों नहीं ? और जो यह कथन किया जाता है कि महानाम्नी आर्चिकके सामवेदमें शामल रखनेसे तीसरी संहिता माननी पड़ती है। इसलिये यह सामवेदका अङ्ग नहीं ?

तो उत्तर यह है कि परिशिष्टि वादी जब यह मानता है किसामवेदका परिशिष्ट आरण्यक, और आरण्यक का परिशिष्ट महानाम्नी आर्चिक, उसका परिशिष्ट फिर वह पाञ्च मन्त्र जिनको वादीने सामसे खारज करदिया, इस प्रकार वेदको छिन्न भिन्न करके परिशिष्टका वोझ बढ़ानेमें क्या प्रमाण ? और यह विचारा छोटासा वेद जो वादीके मतमें केवल, सत्तर तन्त्रका है और फिर उसके पीछे ५५ आरण्यक, और १० महानाम्नी इस प्रकार ६५ मन्त्रका और बोझ बन्ध-देनेसे वादीको क्या लाभ ?

परिशिष्ट वादीके मतमें अन्य यह बड़ी भारी अव्यवस्था मालूम होता है कि अथर्वमें १० पूरेकाण्डका परिशिष्ट, और साममें ७० मन्त्रका परिशिष्ट तो फिर इनके मतमें ऋग्वेद जो पूरे १० मण्डल और संख्यामें पूरे दस हजार १०००० मन्त्रका है उसके परिशिष्ट रूपी फल क्यों नहीं लगा ?

इससे प्रतीत होता है कि परिशिष्ट रूप पूञ्जी से वादीने नया ही वेदोंका व्यापार किया है अस्तु, हमको इनके परिशिष्ट की इतनी चिन्तानहीं जितनी वेदोंके छांटने रूप अशिष्ट व्यवहार की चिन्ता है ।

कारण यह कि सदासे यह वेदमर्य्यादा चली आई है कि ।

१०५८९ मन्त्र ऋग्वेद के हैं और ।

१९७५ मन्त्र यजुर्वेद के है ।

१८७३ मन्त्रका सामवेद और ।

वीस काण्ड अथर्ववेदके हैं । आजकलके कई एक आक्षेप्ता इसको इस प्रकार भङ्गकरते हैं कि सत्तर मन्त्र असली सामवेदके हैं, और अथर्ववेद के भी असली दस ही काण्ड हैं पर इनमें भी बहुतसारी मिलावट ऋग्वेदसे उद्धत किये हुए मन्त्रोंकी है जो छांटदेने योग्य है ।

इतना ही नहीं किन्तु ऋग्वेद में भी पुनरुक्ति दोष है उसमें सैकड़ों मन्त्र बार बार आते हैं जोछांटदेने योग्य हैं इस प्रकार वेदके आत्मभूतमन्त्रोंका हनन देखकर हमारी इस रचना की ओर दृष्टि जाती है ।

दोहा ।

डरतवेद अनधीतसे जिमि मृग राज कुरङ्ग ।
गुण अपगुण जानत नहीं करत अङ्गको भङ्ग ॥

वेद, वेदकेअनभिज्ञ पुरुषोंसे ऐसे डरते हैं जैसा कि (मृगराज) सिंहसे मृगादि शष्प भोजी डराकरते हैं ज्यों का त्यों यही उदाहरण अनधीत वेदनभिज्ञ सिंहोंसे वेदोंके डरने का पाया जाता है, इसलिये हम वेदकी रक्षाके लिये वेद भगवान् रूप हिमांशुसे पुनरुक्ति रूप पङ्क कलङ्क को मिटाने की चेष्टा करते हुए प्रथम पुनरुक्ति दोषका विचार करते हैं कि पुनरुक्ति किसको कहते हैं न्यायशास्त्रके रचयिता अपने न्याय-

सूत्रोंमें यह लिखते हैं कि किसी शब्द वा अर्थको जो वार वार व्यवहारमें लाया जाता है उसका नाम पुनरुक्ति है। पर महर्षि गोतम इसमें यह शरत लगाते हैं कि पूर्वोक्त पुनरुक्ति अनुवादमें नहीं समझनी चाहिये।

आशय यह है कि किसीका अनुवाद करनेमें अर्थात् उसके आशयको दुबारा वर्णन करनेके लिये यदि वही शब्द वा वही अर्थ फिर कथनकिया जाय उसकानाम पुनरुक्ति नहीं। महर्षि का यह कथन उपलक्षणमात्र है। अर्थात् एक अर्थके दृढ़ करनेके लिये यदि कोई शब्द वा अर्थ वार वार आता है वह पुनरुक्त नहीं हो सकता इसी अभिप्रायसे महर्षि व्यास ब्रह्मसूत्रोंके कर्त्ता आवृत्तिरसकृदुपदेशात्। ४।१।१ इस सूत्रमें एक ही अर्थ व शब्दको वार वार प्रयुक्त करना स्वीकार करते हैं और इस को पुनरुक्ति नहीं मानते जैसे कि वेद वा उपनिषद वाक्यों का अभ्यास अथवा प्रणव वा गायत्री मन्त्रका जप करना इनमें वार वार एक प्रकार के शब्द वा अर्थों को अनेकधा रटा जाता है इसका नाम पुनरुक्ति नहीं। ऐसे उदाहरण आर्षग्रथों में अनेक स्थलोंमें पाए जाते हैं जैसा कि अन्तर्य्यामी ब्राह्मण वृहदारण्यक उपनिषद में दो वार आया है एवं छांदोग्य उपनिषद में (तत्वमसि) यह वाक्य नौं वार आया है फिर भी इसमें किसीने पुनरुक्ति की आशङ्का नहीं की।

अत्रविचारना यह है कि वेदों में भी इसी प्रकार का अभ्यास है वा पुनरुक्ति दोष है।

गम्भीर विचार करने से यही प्रतीत होता है कि वेदोंमें अभ्यास है पुनरुक्ति दोष नहीं क्यों कि जो मन्त्र वेदों में

वार वार आते हैं वे किसी प्रयोजन से आते हैं निरार्थक नहीं जैसे कि (शन्नो देवी रभिष्टये) यह मन्त्र चारों वेदोंमें आया है और चारों स्थानों में इसका भिन्न भिन्न प्रयोजन है प्रमाण के लिये देखो सामवेद अध्याय १।३।१३ यह मन्त्र ईश्वरके स्वरूप के निरूपण करनेके लिये आया है क्योंकि इसके पूर्व के मन्त्र में "कविमग्नि मुपस्तुहि, सर्वज्ञ"। सर्वोपरि परमात्माको तुम स्तवनकरो इस प्रकार परमात्माके स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसलिये इस प्रकरणमें यह मन्त्र ईश्वर के स्वरूपको निरूपण करता है कि वह परमात्मा प्रकाश स्वरूप और आनन्दमय तथा सर्व व्यापक है अथर्ववेदमें कां० १।६ यहां यह मन्त्र जल द्वारा चिकित्सा करने के लिये और जल विज्ञानके लिये आया है क्योंकि इससे पूर्व यह पद है कि "आपो याचामि भेषजम्" यजु अध्याय ३६ में यह मन्त्र आचमन के लिये आया है और ऋ० १०।६।४ में यह मन्त्र मुक्ति के निरूपणमें आया है क्योंकि इसके पूर्व "यस्ते शिव तमोरसः" यह मुक्तिका निरूपण है इस प्रकार प्रकरण भेदसे सर्वत्र भिन्न भिन्न अर्थ रखने के कारण यदि चारों वेदोंमें एक ही मन्त्र आजाय तो कोई दोष नहीं इसी प्रकार पुरुष सूक्त भी प्रकरण भेदसे चारों वेदोंमें आता है और जहां जहां आता है वहां वहां अपने नूतन ही अर्थ रखता है इसलिये पुनरुक्ति दोष नहीं सामवेद में पुरुष सूक्त छः ऋतुओंके वर्णन के अनन्तर आया है उन छः ऋतुओं का वर्णन इस प्रकार है कि वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नुरन्त्यः वर्षाण्यनुशरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः साम अध्याय ६।४।३१ वसन्त १। ग्रीष्म २।

वर्षा ३। शर्द् ४। हेमन्त ५। शिशिर ६। हे परमात्मन् यह छः ऋतुएं आप की कृपासे हमारे लिये रमणीकहों इन छः ऋतुओं के वर्णन के अन्तर विराट स्वरूप परमात्मा का वर्णन है जो परमात्म देव उक्त छः ऋतुओं का प्रवर्त्तक है ।

यहां यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि वसन्त इन्नु रन्त्यः यह मन्त्र अरण्यका अध्यायका है जो हमारे मत में सामवेदके पूर्वार्चिक का छवां अध्याय है जिनके मतमें अरण्यका अध्याय वेद वाह्य है उनके मत में चारों वेदों में छः ऋतुओंका वर्णन करने वाला एक भी मन्त्र नहीं यह अवश्य मानना पड़ेगा ।

और जिस सामवेदको सबसे छोटा बतलाया जाता है उसमें छः ऋतुओंके स्पष्ट वर्णन पाए जाने की इतनी बड़ी बात है कि जिसको कोई भी अन्य वेदोंमें नही दिखला सकता अस्तु ।

प्रकृत यह है कि प्रकरण भेदसे पुरुष सूक्त का चारों वेदों में आना कोई दूषण नहीं किन्तु भूषण है ।

पुनरुक्ति वादिओं की ओरसे प्रबल आशङ्का यह की जाती है कि जो मन्त्र एक ही वेदमें बार बार आते हैं वह क्यों आते हैं क्यों कि उनका कोई प्रयोजन नया नहीं देखा जाता इसलिये वे पुनरुक्त हैं इसका उत्तर यह है कि उनका बार बार आना भी प्रयोजन के कारण है निष्प्रयोजन नहीं प्रमाण के लिये देखो मं० ७ । सू० । ७० । मन्त्र १० । नु मे ह्वमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विना विरावत् ।

धत्तंरत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पातस्वस्तिभिः सदानः ॥

परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे युवा पुरुषो तुम मेरे उपदेश को सुनो तुम लोग यज्ञ शालाओं में जाकर रत्नों को धारण

करो और अनुभवी शूर वीरों को लाभ करो और तुम यह प्रार्थना करो कि तुम्हारे विद्वान लोग तुमको सदैव स्वस्ति वाचनों द्वारा रक्षा करें । फिर यह मन्त्र ज्योंका त्यों सूक्त ७० में आया है ।

क्या कोई कह सकता है कि यह किसीने जान बूझ कर दुबारा लिखदिया अथवा किसी लेखक का प्रमाद है कदापि नहीं किन्तु परमात्माने दृढ़ता के लिये सूक्त ७० की समाप्तिमें युवा पुरुषों को संबोधन करके कहा है कि तुम मेरे उपदेश को सुनों अर्थात् वार बार सुनों ता कि किसी आलस्य वा प्रमाद से तुमको मेरा उपदेश विस्मृत न हो जाय एवं इसी मण्डल के सूक्त ७१ का ७ वां मन्त्र सूक्त ७२ के अन्तमें फिर उसी प्रकार दृढ़ता के अभिप्रायसे आया है ।

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथां ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदानः ॥

कि हे अध्यापक तथा उपदेशको तुम लोग, शुभ बुद्धि, उत्तमवाणि, नम्रता, इनको सदा सेवन करो और सदैव इस बात के इच्छुक बने रहो कि वेदवेत्ता विद्वान तुम के स्वस्ति वाचनों से सदा पवित्र करें इस प्रकार वार वार बोधन करनेके लिये कई एक मन्त्र वेदोंमें वार वार आते हैं इनको पुनरुक्त कदापि नहीं कह सकते ।

इसी अभिप्रायसे गायत्री मन्त्र भी वेदों में अनेकधा आया है इस प्रकार मन्त्रों के वार वार आने का नाम पुनरुक्ति नहीं कारण यह कि निष्फल पुनः पुनः उसी अर्थ वा शब्द के आनेका नाम पुनरुक्ति है सार्थक पुनः पुनः आनेसे पुनरुक्ति

नहीं होती । इसी अभिप्रायसे महर्षि गोतमने यह माना है कि निरर्थक (अभ्यास) अर्थात् बार बार आवृत्ति करने का नाम पुनरुक्ति है ।

इतना ही नहीं किन्तु महर्षि गोतमने, स्वयं, अनृत, व्याघात, और पुनरुक्ति, की आशङ्का करके यह उत्तर दिया है कि वेदोंमें पुनरुक्तिदोष नहीं वह सूत्र यह है कि तदप्रामाण्य-मनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः । २ । १ । ५७ । वेदपुस्तक प्रमाण के योग्य नहीं क्यों कि उसमें परस्पर विरोध, झूठ, और पुनरुक्तिदोष है । इस आशङ्का का उत्तर महर्षि गोतमने आगे चलकर यह दिया है कि वेदों में कोई अनृत बात नहीं क्यों कि जिन जिन साधनों से ऐश्वर्य्यकी प्राप्ति लिखी है उनके अनुष्ठानों में दोष पाए जानेसे अथवा साधनों के अङ्गो में दोश पाए जाने से उनके साध्य फलों की प्राप्ति नहीं होती इसलिये वेदों में अनृत दोष नहीं एवं परस्पर विरोध भी नहीं, क्यों कि एक स्थानमें यदि यह लिखा है कि "मुखादग्निरजायत" और फिर लिखा है "तदेवाग्निस्तदादित्यः" । इत्यादि स्थलमें अर्थके न समझनेंसे विरोध प्रतीत होता है अर्थात् जो पुरुष "मुखादग्निरजायत" इस वाक्य में अग्नि के अर्थ भौतिक समझ कर "तदेवाग्नि" में वही भौतिक अग्नि के अर्थ समझता है उसके न समझने के कारण विरोध प्रतीत होता है वास्तव में नहीं ।

तात्पर्य्य यह है कि "मुखादग्निरजायत" यजु ।३१।१२। इस मन्त्र के अर्थ भौतिक अग्नि के हैं और "तदेवाग्निस्तदादित्यः" यजु । ३२।१। इस स्थान में अग्नि शब्द के अर्थ परमात्माके

हैं इसलिये परस्पर विरोध नहीं, और अभ्यास अर्थात् दृढ़ता के अभिप्राय के लिये वार वार आनेसे पुनरुक्तिदोष भी वेदों में नहीं।

इस प्रकार महर्षि गोतमने वेदोंमें पुनरुक्ति की आशङ्का का परिहार किया है। यहां कई एक विद्यमान वेदों को पुनरुक्ति दोषसे दूषित मानने वालोंका यह कथन है कि महर्षि गोतमाचार्य्यको वेदोंसे पुनरुक्तिदोषके दूर करने की नहीं सूझी क्यों कि "तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः"।

इस सूत्र में तत् से ब्राह्मणग्रन्थ महर्षि गोतमने लिये हैं वेद नहीं। ऐसे वादिओंका लेख यह है "तत्र दृष्टार्थ प्रवक्तृकः शब्दो वेदः ईश्वरोक्तत्वादनाशाशङ्कनीयदोषतयानपरीक्षितु मर्हति"। न्यायसूत्र वैदिकवृत्ति पृ० ६६। दो प्रकारके शब्द प्रमाणों में से वेद दृष्टार्थ प्रवक्ता ईश्वरका शब्द है। इस लिये वह परीक्षा करने योग्य नहीं। दूसरा जो अदृष्टार्थ प्रवक्ता मनुष्य का शब्द प्रमाण है उसी को यहां महर्षि गोतमने अनृतादि दोषों की आशङ्का करके परिहार किया है।

ऊपर के लेखसे तो यह प्रतीत होता है कि पुनरुक्ति वादी के मतमें वेद पुनरुक्ति दोषके आक्षेप योग्य ही नहीं। पर मालूम होता है कि एक आक्षेप ही नहीं, किन्तु इस पुनरुक्तिवादीने तो वेदोंको आक्षेपों का भाण्डार बनादिया जो सहस्रों मन्त्र वेदों से निकाल दिये और अथर्ववेदको भी दो वेदों का समुच्चय बतलादिया।

यहां आश्चर्य्य जनक यह बात है कि कहां तो यह कथन कि वेदों में पुनरुक्ति की आशङ्का करना ही कुफर है। और

कहां अब कदली स्तम्भ के समान उधेड़ते उधेड़ते कुछ सार ही नहीं बतलाते, अर्थात् सामवेद में कुल सत्तर मन्त्र रक्खे हैं। और अथर्व के केवल १० काण्ड फिर उनमें भी मिलावट इस प्रकार वेदका सर्वनाश करते हुए भी हठात् अपने आपको वैदिक कहते ही चले जाते हैं। अस्तु—

प्रसङ्ग यह है कि यदि पुनः पुनः वाक्य वा अर्थ के आजानेका नाम पुनरुक्ति है तो ७० मन्त्रके वेदानुसार मन्त्र ६६। में ज्योति शब्द छः वार आया है यह पुनरुक्त क्यों नहीं? वादी इसका उत्तर यही देगा कि यह सार्थक है अर्थात् छयों जगह यह प्रयोजन रखता है तो हम भी यही कहते हैं कि जो मन्त्र वेदों में कई एक स्थानों में आए हैं वे सब, सप्रयोजन हैं जैसा कि हम पूर्व दर्शा आए हैं।

उक्त मन्त्र का पाठ इस प्रकार है कि—

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रोज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः॥

सत्तर मन्त्रका सामवेद पृ० ३४। वेदोंसे पुनरुक्ति दोषके मार्जनकर्ताने इसके यह अर्थ किये हैं कि हे मनुष्य पृथिवी लोक के सब पदार्थोंका देनेवाला अग्नि, ज्योति है, अन्तरिक्ष लोक के सब पदार्थोंका देनेवाला वायु, ज्योति है, और द्युच लोकके सब पदार्थोंके देनेवाला सूर्य ज्योति है।

क्या कोई कह सकता है कि यहां छः स्थान में आए हुए ज्योति शब्द के अर्थ पृथिवी लोकादिकों के सब पदार्थों के दाता एक ईश्वर शब्द से कैसे संगत हो गए।

यहां यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि "अग्निर्ज्योति-र्ज्योतिरग्निः" यह केवल सामवेद का ही मन्त्र नहीं किन्तु यजुः ३।९। में भी है फिर न जाने इसको सामवेदका मन्त्र मान कर सर्वाङ्ग पूर्ण ७० मन्त्र के सामवेद में कैसे स्थान दिया गया ?

इतना ही नहीं किन्तु योगसमाधिको बतलानेवाले साम-वेद में इसका क्या काम ? क्योंकि इसके अर्थवादीने तीनों लोकों के पदार्थों को देनेवाले अग्नि, वायु, और सूर्य के किये हैं। योग में इन भौतिक अर्थोंका कोई सम्बन्ध नहीं। यदि यह कहा जाय कि अग्न्यादि नाम यहां परमात्मा के हैं, तो फिर भिन्न भिन्न लोकों के पदार्थों का दाता एक एक कैसे माना गया।

सार यह है कि सामवेद केवल, योग विषयके वर्णन के लिये ईश्वरने बनाया है, यह भी इनकी मनोंवडन्त है। तत्व यह है कि सामके अर्थ ज्ञान और कर्म द्वारा दीर्घविद्या विचार करने के हैं वा यों कहो कि ज्ञान और कर्मका प्रतिपादन इस वेदमें स्पष्टतया किया गया है। इस लिये अनुष्ठान के वार वार बोधन के अर्थ, बल दिखलाने के अभिप्रायसे इस में मन्त्रोंका प्रयोग वार वार है जो अल्पश्रुतों को पुनरुक्तिके रूप में भासता है।

वास्तवमें न वेदों में पुनरुक्ति है और न कोई परस्पर विरोध और न किसी असम्भव बातका वर्णन है, अर्थात् अनृत, व्याघात, और पुनरुक्त, इस दोषरूप पङ्क कलङ्क से वेद सर्वथा वर्जित है। इस बातको हम पूर्व विस्तृत रूप से दर्शा आए हैं कि वेदोंका कोई परिशिष्ट नहीं, क्योंकि परिशिष्ट को

तो पीछेसे लिखकर अपनी पुस्तकों के साथ अल्पज्ञ जोड़ते हैं। फिर ईश्वरीय पुस्तक में परिशिष्ट कैसे? यहां यह बात भी याद रखने योग्य है कि चारों वेदोंमें परिशिष्ट यह नाम ही नहीं प्रत्युत उच्छिष्ट तो पाया जाता है। परन्तु परिशिष्टका गन्ध भी नहीं।

इस विषय में हम यह भली भान्ति स्पष्ट कर चुके हैं कि ऋग्वेद और यजुर्वेदमें तो कोई वादीभी परिशिष्टका कीर्तन नहीं करता फिर जब ऋग्वेद और यजुर्वेदके सहस्रों मन्त्रों में ईश्वर न भूला तो फिर साम और अथर्व में क्यों भूल गया? जो परिशिष्ट लगाना पड़ा। गम्भीर विचार से सार यह निकलता है कि अल्पश्रुत लोग अपने भ्रम प्रमादादि दोषों से वेदों को कलङ्कित करते हैं। वास्तवमें वेदों में कोई दोष नहीं। किसी कविने ठीक कहा है "बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदः" ऐसे लोगों से वेद सदा भय करता है जो अपनी अल्पज्ञता के कारण वेदोंकों दूषित करते हैं। सच है "डरत वेद अनधीत से जिमि मृग राज कुरङ्ग। गुण अपगुण जानत नहीं करत अङ्ग को भङ्ग॥" वेदमर्य्यादा यह है कि "अग्निमीडेपुरोहितम्" से लेकर "समानीव आकूति" इस मन्त्र तक ऋग्वेद और "अग्न आयाहि वीतये" से लेकर "स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा" इस मन्त्र तक साम, एवं आद्योपान्त यजुर्वेद। और अथर्वेद सर्वथा निष्कलङ्क हैं।

इनमें पुनरुक्ति आदिदोषोंका गन्धमात्रभी नहीं।

पुनरुक्तिवादी अपने भ्रमप्रमादादि दोषोंसे वेदोंको दूषित समझता है।

अब पुनरुक्तिवादीके मत में प्रतिज्ञाभङ्ग दोष दिखलाते हैं ।

१ । मैं वेदमें पुनरुक्ति मानना तो क्या ? मुख से कहना पाप समझता हूं । कांटछांट वेदकी मनुष्य नहीं कर सकता आपको भ्रम हुआ है कि मैं कांटछांटकर रहा हूं । आर्य्यमित्र ।१६ मार्च ।१९१६ फिर इसके विरुद्ध वेदसर्वस्व में आधे अथर्व वेदको परिशिष्ट अर्थात् अङ्गिरा ऋषिका बनाया हुआ मानकर वेदबाह्य और अशुद्ध करदिया पढ़ो पृ०८६ से ९२ तक वेदसर्वस्व

२ । मैं स्वामी दयानन्द जी से किसी सिद्धान्त में भी विरुद्ध नहीं हूं कुछ थोड़सा मुक्ति में भेद है । हां यदि सामवेद के मन्त्रों का अनुवाद करके छपवा दूं तो आश्चर्य नहीं ।

आर्य्यमित्रमार्च १६।१९१६ इस के विरुद्ध करीब २ उन्नीस हिस्से सामवेद को पुनरुक्ति दोष कह कर छांट दिया अर्थात् १९७३ मन्त्रों में से सामवेद के ७० असली मन्त्र माने हैं ।

३ । ऐसा अनर्थक करके फिर भारतमित्र फरवरी में स्वयं यह छपवाया कि जो लोग ऋग्वेदमें पढ़ना चाहें वे ऋग्वेद में पढ़लें जो साम में पढ़नाचाहें वे साम में पढ़लें । इसलिये सत्तर मन्त्र पृथक् छपवादिये हैं । और इसके विरुद्ध इस सत्तर मन्त्रके वेदकी भूमिकामें यह लिखा कि जो मन्त्र ऋग्वेद से उद्धृत किए गएथे वह निकाल दिए गए । भारतमित्र में इससे अन्यथा छपाकर भीरुता का परिचय दिया । क्या धार्म्मिक समाजों की वेदियें इसीलिये बनी हैं; कि वह

इसप्रकार समय समयपर झूठ बोलकर काम चलाने वालोंको आश्रय दियाकरें ?

४ । स्वयं अपनी बनाई हुई वेदान्त वृत्तिमें (दर्शनाच्च) यह सूत्र ५ वार (स्मृतेश्च) यह दो बार (भेदव्यपदेशाच्च) यह ३ बार एवं अन्य दर्शनोंमें भी अनेक स्थानोंमें बार बार आए हूए सूत्रों का तो प्रकरण भेदसे नया अर्थ करें ? पर वेदमें यदि पुरुषसूक्त चार बार आजाय तो इनके मतमें पुनरुक्त समझा जाय । बुद्धि की इस अव्यवस्था को कौन ठीक करे ?

५ । मेरामत स्वामी दयानन्दजीसे किसी अंशमें भी विरुद्ध नहीं । १६ । मार्चके १९१६ के आर्य्यमित्रमें लिखकर फिरवेद छांटनेका विरोध कहांसे निकाल लिया ।

६ । वेदांतवृत्ति पृ० ४५ पर चार वेद मानने के लिये उसी मन्त्रका प्रमाणदिया गया है, जिसका खण्डन, "वेदसर्वस्व" पृ० ६४ में इसप्रकार किया है कि (अथर्वाङ्गिरसो मुखम्) अथर्वोंको जो परमात्माने ज्ञान दिया उसका नाम अथर्ववेद और जो अङ्गिरा ऋषिने बनाया उसका नाम अङ्गिरो वेद । इस प्रकार पूर्वोक्त वेदान्तवृत्तिके विरुद्ध वेदसर्वस्व पृष्ठ ६४ । का लेख है फिरभी "चेले इन्हे खतमुलमुरसलीन" अर्थात् अन्तिम आचार्य्य मानते हैं ।

७ । आप कहते हैं कि स्वामी दयानन्दजीने भी वेदों को छांटा है, ठीक है यों तो वादी स्वामी दयानन्द जी के अनन्य भक्त हैं जबतक उनके लेखका सहारा न मिले तब तक मुख से मक्खी भी नहीं उड़ाते । यदि ऐसा है तो बतलाएं कि स्वामी

दयानन्द जी ने पांचवां "अङ्गिरोवेद किसग्रन्थ और किस पृष्ठ की किस पंक्ति में लिखा है ?

८। ब्रह्म के वीर्य्यपात होनेसे पैदा हूए ऋषिओं से वेदों की उत्पत्ति कहां मानी है ? जैसी कि वादी वेदसर्वस्व के ८६ पृष्ठमें मानता है।

अथर्वाको आदि ऋषिमानकर महर्षि स्वामिदयानन्द अथर्वा के नामपर अथर्ववेद का नाम पड़जाना कहां मानते हैं ?

९। जब यह आर्य्यसमाजी बनकर वारवार आनेवाले मन्त्रों को पुनरुक्त कहते हैं तो ३४३ पृष्ठ ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के लेखका क्या उत्तर रखते हैं जिसमें लिखा है कि जो मन्त्र चारों वेदोंमें आते हैं प्रकरण भेदसे अर्थ भेदके अभिप्रायसे आते हैं।

१०। हरिद्वार के गत कुंम्भम पुनरुक्तिवादीने स्वर्गवासी श्री पंडित तुलसीराम जी को यह विज्ञापन दिया था, कि यदि वेदोंमें पुनरुक्ति नहीं तो पुरुसूक्त चारों वेदोंमें क्यों आता है ? विज्ञापनका पाठ इस प्रकार है। यदि आप वेद पुस्तकों में पुनरुक्त दोष नहीं मानते तो सारे पुरुष सूक्त का नास ही, केवल पहले दो मन्त्रोंका ही विशेष अर्थ लिखकर प्रकाशित करें जो ऋग्वेद में रहते हुए उन मन्त्रों से किसी प्रकार भी प्रकाशित नहीं हो सकता।" हरिद्वार। ११।४। १५। हरिप्रसाद वैदिक मुनि इस प्रकार वेदोंमें पुनरुक्ति मानकर यह समय समय पर यह भी कहने लगजाते हैं कि हमतो अन्यत्र गए हुए मन्त्रों को एकस्थानपर रखना चाहते हैं।

और वेदोंसे एक मात्रा भी नहीं निकालना चाहते। यह दम्भ तो अब इन का नहीं चल सकता. जब अङ्गिरो वेदके दस काण्ड अथर्व में मिले हुए स्पष्ट लिखदिए गए हैं। और उनको छांटदेने का बीड़ा उठा लिया गया। अस्तु।

प्रसङ्ग यह है कि पुरुषसूक्त ईश्वर ने चारों वेदों में उपयुक्त समझ करदिया, किसीने पीछे से किसी वेदमें भी नहीं मिलाया इस बातको हम प्रथम विस्तार पूर्वक निरूपण कर आए हैं यहां इस अभिप्राय से पुनरुल्लेख किया है कि कई एक यूरोपीयन विद्वानों की यह थ्यूरी (Theory) है कि आर्य्योंमें वर्णचतुष्टयका विभाग प्राचीन नहीं किन्तु मनुस्मृति के समयका है। वह लोग यह कहते हैं कि पुरुषसूक्तमें जो स्पष्टरीतिसे चारों वर्णोंका विभाग पाया जाता है इससे प्रतीत होता है कि पुरुषसूक्त किसीने पीछेसे वेदों में मिलादिया।

इसका उत्तर यह है कि गुणकर्म्मानुसार चारों वर्णोंके विभाग कथन करनेवाले मन्त्र वेदों के अनेक स्थलों में आते हैं इसलिये यह कथन सर्वथा मिथ्या है कि वैदिक समयमें वर्णविभाग न था।

अन्य युक्ति यह है कि यदि कोई मिलाता तो किसी एक वेदमें मिलाता? चारोंमें मिलानेका क्या प्रयोजन था? क्यों कि मिलानेवालेका प्रयोजन तो एक से भली भान्ति सिद्ध होजाताथा फिर चारों में क्यों मिलाया?

यदि इसी प्रकार की थ्यूरिओंपर विश्वास करके वेदोंका संशोधन प्रारम्भ करदिया जाय तो वेदों में छ ऋतुओंका

वर्णन भी मिलावट मानना पड़ेगा । क्यों कि वेदों के समान आज कल के पुस्तकों में दो दो मास की छ ऋतुओं का वर्णन नहीं ?

"नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं ।" ८।७।१७ इत्यादि गहरी फिलासफी के बोधक स्थल भी पीछेसे मिलेहुए मानने पड़ेंगे ।

बहुत क्या इन थ्यूरी वादिओंने तथा वेदोंके संशोधकों ने वेदोंका नाश करके नास्तिक बनने में कोई यत्न नहीं छोड़ा । यूरोपीयन स्कालरों का दोष इसलिये क्षमा योग्य है कि वे वेदों की भाषा के पूर्ण ज्ञाता नहीं जो कुछ करते हैं रिसर्च के विचारसे करते हैं । इसलिये हम उन में उपेक्षाबुद्धि करके, विशेषतः यहां भारतीय लोगों की समीक्षा करते हैं । जो रिसर्च का नाम धरकर वेदोंको धरातल से उठाकर रसातल में पहुंचादेना चाहते हैं ।

इन लोगों में से कई एक लोगोंका यह विचार है कि सामवेद के मुट्ठीभर मन्त्रों में करीब करीब १८ सौ ऋग्वेद के मन्त्रों के मिलजानेसे उनका सौन्दर्य्य बिगड़ गया । इस बातको सुनते हुए ही अल्पश्रुत पुरुषोंके हृदय हिल जाते हैं । वे लोग अपने अज्ञानके कारण सच मुच यह समझने लग पड़ते हैं कि जब वास्तव में, सामवेद के अपने ७० सत्तर ही मन्त्र हैं तो फिर १८ सौ मन्त्र के लगभग जब दुबारा ऋग्वेदके मन्त्र साम में उद्धृत किये गए तो वेदों में पुनरुक्ति कैसे नहीं ?

इसका उत्तर यह है कि ऐसा संशय तब उत्पन्न होता है जब कोई पुरुष पहले यह समझलेता है कि पहले पहल ऋग्वेद बना फिर उसी के मन्त्र सामवेदमें दुबारा उद्धृत किये

गए। जब वह यह समझले कि इस बात में कोई तत्व नहीं कि ऋग्वेद पहले बना किन्तु ईश्वरने जब वेदों का प्रकाश किया तो स्वतन्त्र सत्तासे चारों वेदोंका प्रकाश आदि सृष्टिमें एक कालावच्छेदेन अर्थात् समकाल में किया तो फिर उक्त शङ्का को कोई स्थान नहीं रहता।

अथवा उक्त शङ्का का यह उत्तर देना चाहिये कि सामवेद के १८७३ मन्त्रोंमें से १८ सौ के लगभग मन्त्र ऋग्वेद में चले गए क्योंकि "वेदानां सामवेदोऽस्मि" इस गीता वाक्य के अनुसार सामवेद सब वेदोंसे श्रेष्ठ और ज्येष्ठ है।

अब विचारना यह है कि ऋग्वेदके करीब करीब दस हज़ार हज़ार छः सौ मन्त्रमें यदि अभ्यास के लिये १८ सौ मन्त्र मिल जायं तो वह एक सौके पीछे दो दो भी कठनाई से आएंगे। जब वादी सन्ध्याके मनसा परिक्रमा के मन्त्रोंमें छः बार "योऽस्मान् द्वेष्टि" इस वाक्य की आवृत्ति को स्वीकार करता है तो फिर इतने अगाध जलमें यदि सैकड़ों वेद मन्त्र और आमिले तो क्या दोष हुआ ?

यदि यह कहा जाय कि "तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" इस वेदमन्त्र में पहले ऋग्वेद का नाम है और पीछे सामवेदका। इससे सामवेद का पीछे बनना और ऋग्वेदका प्रथम बनना माना जायगा तो उत्तर यह है कि क्या नाम पहले आजाने से किसी पदार्थ का प्रथम होना माना जा सकता है ? यदि ऐसा हो तो "पार्वतीपरमेश्वरौ वन्दे" इस वाक्य में परमेश्वर से भी प्रथम पार्वती माननी चाहिये। एवं

अनेक उदाहरण ऐसे पाए जाते हैं जिनमें प्रथम नाम आजाना प्रथम बनने का साधक नहीं होता ।

यह उत्तर प्रतिबन्दी उत्तर के अभिप्रायसे दिया है। वास्तव में किसी वेद के मन्त्र भी किसी वेद में नहीं गए यह केवल अल्पश्रुतों की भ्रान्ति है। या यों कहो कि यह स्वकपोलकल्पित थ्यूरीवादिओं की झूठी कल्पना है।

एक थ्यूरी नई यह घड़ी गई है कि अथर्वा ब्रह्मका सबसे बड़ा पुत्र था ब्रह्माने उसी को सबसे प्रथम वेद का ज्ञान दिया और दूसरी ओर उसका भाई अङ्गिरा भी उसीं ब्रह्मवीर्य्य से उत्पन्न हुआ था। वह खारे जलसे उत्पन्न हुआ इसलिये उसका अङ्गिरोवेद, खारा अर्थात् त्याज्य समझना चाहिये। इस अङ्गिरो वेदवादी वा यों कहो कि अथर्ववेदके केवल १० काण्ड मानने वाले थ्युरीवादीसे यह अत्यन्त भूल हुई जो वेदान्तवृत्ति पृ० ३२७ पर आङ्गिरोवेदका मन्त्र देकर वृत्तिको अप्रमाणित करदिया वा यों कहो कि अशुद्ध वेदका मन्त्र देकर वृत्ति को अशुद्ध करदिया। वह मन्त्र यह है कि "प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ।" अथर्वकाण्ड ११।२।४।१ ।

मालूम होता है इस मन्त्र को प्रमाण देते समय तक वादी को इस थ्यूरीका ज्ञान नहीं था कि पीछे के १० काण्ड अथर्व के अथर्वाने नहीं बनाए किन्तु अङ्गिराने बनाए हैं, अस्तु। ऐसी भूलें तो अङ्गिरो वेदवादीके मत में सहस्रों हैं। उक्त मन्त्र की तो कथा ही क्या, यदि अथर्व के पीछेके १० काण्ड उड़ा दिये जांय तो "ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।" का० अ० ।११।३।५

इत्यादि मन्त्र भी उड़ जाते हैं, अन्य दोष इस थ्यूरीवादी के मत में यह बड़ा भारी है कि "ब्रह्मादेवानां प्रथमः सम्बभूव" इस श्लोक के अनुसार अङ्गिरो वेदका कर्त्ता मु० १।१।१ अङ्गिरा ऋषि अथर्वासे चौथी पीढ़ीमें हुआ क्योंकि अथर्वा १। दूसरा अङ्गिरा २। तीसरा सत्यवाह ३। फिर अङ्गिरस को लिखा इस लेखानुसार वादीने वेदसर्वस्व के अथर्व निरूपण में लिखा है कि अथर्वा ऋषि से अनन्तर अङ्गिरस तक कमसे कम पचास वर्ष लगे होंगे, इस से यह सिद्ध किया है कि अथर्ववेद के दस काण्ड पचास वर्ष पीछेसे बनाए गए और इस के विरुद्ध गोपथ ब्राह्मण की कथा का मनोघड़न्त तात्पर्य्य निकालकर वादी यह लिख आया है कि अथर्वा और अङ्गिरस दोनों एक वीर्य्यसे अर्थात् निराकार ब्रह्म के वीर्य्यसे और एक काल में दोनों ऋषि उत्पन्न हुए। अब इन दोनों थ्यूरिओंमें से किसको सची और किसको झूठी माना जाय। हम थ्यूरीवादिओं के मतको इसलिये मनोघड़न्त समझा करते हैं कि इसमें कुछ सार नहीं होता। अस्तु।

प्रसङ्ग यह है कि इस प्रकार मनमानी थ्यूरियें बनाकर लोगोंने वेदोंको अनेक प्रकार से कलङ्कित किया है। इसी प्रकार कई एक आधुनिक स्मृतिकारोंने "जलयोनिमग्रे" ऋग्वेद के इस पाठके स्थानमें अग्रे के स्थानमें अग्ने बना कर सतीकी रसमका मण्डन किया। यह थ्यूरी भी सर्वथा मिथ्या है क्योंकि जब वेदोंमें आत्महत्याको भयङ्कर पाप माना गया है तो यह कब सम्भव था कि वेद स्वयं आत्महत्या की आज्ञा देते।

इस प्रकार वेदोंसे कलङ्कपङ्क को हटाना आर्य्यमात्र का परम कर्त्तव्य है । जो लोग यह कहते हैं कि वेदों में मन्त्रसंख्या एक नहीं और ऋग्वेद संहिताओं में इसप्रकार परस्पर भेद बतलाते हैं ।

अनुवाकानुक्रमणी	....	१०५८० ।
छन्दःसंग्रह श्लोकानुसार	....	१०४०२ ।
सायणाचार्य्य	....	१०००० कुछ अधिक ।
स्वामी दयानन्द	....	१०५८९ ।
पण्डित शिवशङ्कर	....	१०४०२ ।
पण्डित जगन्नाथ	....	१०४५२ ।
चरणव्यूहका टीकाकार	....	१०४७२ ।
सत्यव्रत	....	१०४४२ ।
वर्त्तमान संहिता के अनुसार		१०४४० ।

इत्यादि भिन्न भिन्न संख्या लिखकर जो वादीने लोगों को वेदविषयक संशयसागरमें धकेलकर गोते दिये हैं यह काम वैदिक मात्र की दृष्टि में निन्दनीय है ।

वास्तवमें बात यह है कि उक्तप्रकार से संख्या का भेद शाखाओं में है मन्त्रसंहिता में बिलकुल नहीं । प्रमाण के लिये देखो राजलायब्रेरी अलवर ।

नं० ३१ पीटरसन सूची इस संहिता का पूरा पता है । और जो वेदसर्वस्व के पृ० ४६ पर यह लिखा है कि ऋग्वेद की आश्वलायनी, शांख्यायनी, शाकला, वाष्कला, माण्डुकेयाचेति । ऋग्वेदकी आश्वलायनी, शांख्यायनी, शाकल, वाष्कल और माण्डूकेया, यह पाञ्च शाखाएं हैं । इनमें से

शांख्यायनके विषयमें पृ० ४७ पर यह लिखा है कि शाङ्ख्यायनी संहिता तो इस समय संसार में नहीं है यह निश्चित मत है।

यह लेख वादी की अल्पश्रुतता को प्रगट करता है। क्योंकि एशिएटिक सोसायटी कलकत्तामें शांख्यायनसंहिता ढूंढलीगई है और आप कहते हैं कि संसारभरमें नहीं? इसी प्रकार झूठ सच्च मिलाकर अनेक प्रमाणाभासोंसे काग़ज़ काले किए हैं। विशेष समालोचना से ग्रन्थ वड़ता है इस की पूरी समीक्षा हम वेदमर्य्यादा के द्वितीय भाग ऋग्वेदीय शाखा विचारमें करेंगे। यहां इतना लिखना अत्यावश्यक है कि वाष्कल शाखा के सूक्त क्रममें आपने ऋग्वेद के कई एक सूक्तोंका प्रवक्ता दीर्घतमा ऋषि को वतलाया है जिसका वर्णन महाभारतमें आता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होजाता है कि शाखाक्रम बहुत अर्वाचीन है प्राचीन नहीं। इसलिये शाखाओं को वेद मानकर वेदोंमें पाठभेद तथा संख्याभेद सिद्ध करना एक प्रकारसे अल्पश्रुतों को संशयसागरमें निमग्न करना है।

प्रवल युक्ति यह है कि यदि मन्त्रसंहिता न होती तो शाखाएं किस आधार पर वनती। प्रोफेसर मैक्समूलरादि किस आधारपर ऋग्वेद को समस्त भूमण्डलमें प्राचीन मानते इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि वादी की अत्यन्त भूल है। जो मन्त्रसंहितामें संख्याभेद मानता है, यदि जानवूझ कर "घटं भित्वा पटं छित्वा" के न्याय का अनुसरण करके स्वख्याति का उपाय रचा है तो सर्वथा प्रायश्चित्तीय काम किया है क्योंकि, "सुरापो मुच्यते पापात् तथा गोघ्नोऽपि मुच्यते मुच्यते ब्रह्महन्ता च वेदहन्ता न मुच्यते।" इस श्लोकके अनुसार

शराबीका प्रायश्चित्त हो सकता है और गोहत्यारेका भी प्रायश्चित्त हो सकता है, एवं ब्रह्महत्यारे का भी प्रायश्चित्त है पर वेदहत्या करनेवालेका कोई प्रायश्चित्त नहीं इसी अभिप्रायसे मनुजी यह कहते हैं कि "नास्तिको वेद निन्दकः" वेदकी निन्दा करने वा करानेवाले नास्तिक होते हैं इससे बढ़ कर नास्तिकपन और क्या हो सकता है कि जिस वेदका जो देवता है उसी देवताके नाम से वह मन्त्र शुरु होना चाहिये । यह प्रतिज्ञा करके फिर सामवेद का विवस्वान् देवता मानकर भी "अग्ने विवस्वदा भर" यहां से सामवेदका आरम्भ किया और "अग्ने आयाहि वीतये" को छोड़ दिया । यदि कोई इनसे यह पूछे कि जब तुह्मारे मत में आग्नेय, ऐन्द्र, पावमान, यह तीन पर्व ही सामवेद के पूर्वार्चिक में हैं तो फिर यह विवस्वान् देवतावाला चौथा पर्व कहां से आगया ? पर यहां तो कहने सुनने की बात ही नहीं यहां तो एक धुन इस बातकी समागई है कि भारतवर्षमें मूर्खों की कमी नहीं इसलिये कुछ न कुछ अटकल पच्चू लिख दो, कोई न कोई अवश्य मानेगा ।

अन्यथा यह क्या युक्ति है कि १० मण्डलोंका दस हज़ार से बड़ा सम्बन्ध है इसलिये ऋग्वेद के १०००० दस हज़ार मन्त्र ही होने चाहिये ।

फिर अथर्व का और ऋग्वेद का गहरा रिशता है इसलिये अथर्व के भी १० ही काण्ड होने चाहिये क्या इसी का नाम वैदिक रिसर्च वा अनुसन्धान है ? कि सदासद् के विचारको छोड़कर अथर्व वेद विचारे के दस काण्ड केवल रिशतेदारी के नातेमें ही उड़ादिये जांय और इसका भी अभीतक कोई

कारण नहीं मालूम हुआ कि ऋग्वेदने चौथे स्थानमें रिश्ता कैसे जा जोड़ा ? जो बीचमें यजुः साम को छोड़कर अथर्व से सम्बन्ध गांठलिया ।

सूक्ष्म विचार करने से मालूम होता है कि (हलन्त्यम्) इस सूत्रका अनुकरण करके यह भी एक विलक्षण वैदिक प्रत्याहार वनाया गया है, जो हल प्रत्याहार के समान आद्यन्त वर्णा को लेकर चला है । इसी नियमानुसार वादीने यह भी लिखा है कि स्व स्व देवताके नाम से प्रत्येक वेदका प्रारम्भ होता है और जिस मन्त्र में लोक का नाम आजाय वहां उस वेदका अन्त समझना चाहिये । अस्तु । "अग्निमीडे पुरोहितं" से ऋग्वेद प्रारम्भ हुआ और "समानीव आकूति समाना हृदया-नि वः" इस मन्त्र में अन्त हुआ तो वताईये इसमें पृथिवी लोक का वाचक कौनसा पद है ? जिस प्रकार इनका आद्यन्त प्रत्याहार सम्बन्ध यहां टूट गया, एवं यजुः का वायुदेवता और अन्तरिक्षलोक माना है । न यजुर्वेद वायुनामसे प्रारम्भ हुआ न अन्तरिक्ष पर समाप्त है ? एवं अथर्व साम को भी बुद्धिमान लोग समझ लें ।

हां इन दोनों वेदों में एक यहां निराली वात वतलाइ गई है कि नीति छः गुणोंवाली होती है इसलिये अथर्व के भी पूरे छः सौ मन्त्र ही असल समझने चाहिये अन्य सव प्रक्षिप्त हैं । दूसरी युक्ति यह दी है कि अथर्व में शारीरिकविद्या अर्थात् चिकित्सा का वर्णन है और चिकित्सा में शरीरके छः कोश माने गए हैं इसलिये छः कौशिक विद्या के अनुसार अथर्वसंहिता में पूरा ६०० सौ मन्त्र ही होना चाहिये ।

ठीक है यदि एवं अङ्गप्रत्यङ्गी बादरायण सम्बन्ध मिला कर ही वेदोंका अनुसन्धान किया जाय तो वेद सप्तश्लोकी गीता के समान केवल चिन्ह मात्र रह जायेंगे ।

इसी आश्रय पर पुनरुक्तिवादीने ७० मन्त्र का साम बनाकर फिर भी यह कहा है कि विन्दु इसमें अधिक लगगया वास्तवमें द्यौ लोक सातवां है इसलिये ७ संख्या ठीक है ।

जब हम प्रोफेसर मैक्समूलर साहब की वेदविशयमें समालोचना पढ़ते हैं और इस ओर भारत में माई के ऐसे २ लालों की लीला भी देखते हैं, जो वेदों पर कुठाराघात करके अपना नाम करना चाहते हैं तो चित्त विस्मयसागरमें डूब जाता है, पर फिर भी हम रिसर्चस्कालरों के लेखरूप विस्तृत जलयानों को अवलम्बन करके यथा कथञ्चित् उत्तीर्ण होकर यह कह सकते हैं कि वेदों से पुरानी पुस्तक इस समस्त संसार के पुस्तकालयमें एक भी नहीं ।

और इसमें आजतक एक अक्षर की भी त्रुटि वा अधिकता नहीं पाई जाती । इस विषय में फिलप्स साहब इस पुस्तकमें (Teachings of the Vedas by Philips p. 17.) यह कहते हैं कि—

संहिताओं का सदासे यही रूप था जो अब है । देखो प्रोफेसर मैक्समूलर भट्ट यह कहते हैं कि—

After the latest researches into the history and chronology of the books of the Old Testament, we may now safely call the Rig Veda the oldest book, not only of the Aryan humanity but of the whole world.

जब मैंने पुस्तकों के इतिहास तथा वंशावलि विषय ओल्ड टेस्टामेण्ट में खोजा तो उससे मैं निर्भयता पूर्वक कह सक्ता हूं कि ऋग्वेद केवल आर्य्यजातीमें ही सबसे पुरानी पुस्तक नहीं किन्तु समस्त संसार मण्डलमें सब से पुरानी हैं। अनुसन्धान करनेसे प्रतीत होता है कि सब वेद इसी प्रकार प्राचीन और ज्योंके त्यों शुद्ध चले आते हैं। जैसा कि हम पूर्व अनेक उदाहरणों से दर्शा आए हैं।

और वादी भी यह मानता है कि चारों संहिताओंका विभाग अथर्वा ऋषि ने एक समय ही किया इसप्रकार आदि कालमें वादी के मतमें भी चारों वेद शुद्ध थे।

शाखाभेद वेदसंहिताओं से सहस्र वर्ष पीछे हुआ यह भी वेद पुनरुक्ति के आचार्य्यने वेदसर्वस्व के उपोद्घात पृ० २०। में स्पष्ट रीतिसे स्वीकार किया है। "फिर शाखा संहिता नहीं" ऋषि दयानन्द के इस मन्तव्यपर ननु न च कैसे कर सकता है। और कैसे कह सकता है कि स्वामीका अर्थ सर्वथा निराधार होनेसे अत्यन्त निर्बल है और जो अथर्वा को अथर्व वेद का प्रवक्ता माना है यह भी मिथ्या है क्योंकि जब अथर्वाने इन के मत में चारों वेदों का विभाग किया तो अथर्वा ऋग्वेद का भी प्रवक्ता हुआ। फिर एक काल में बने हुए ऋग् और अथर्वमें ऋग्वेद के मन्त्र कैसे मिल गए। यदि कहा जाय कि शाखाओं के समयमें मिल गए तो स्वामी दयानन्द जी ने जब यह कहा कि शाखा वेद नहीं तो क्या दोष किया?

सार यह है कि प्रथम प्रवक्ता तो इनके मत में अथर्वा ऋषि ही है जिसने ईश्वर से पहले पहल ब्रह्मविद्या को पाकर

चारों वेदों का विभाग किया । इसलिये सबसे बड़े अथर्ववेद के ही मन्त्र अन्य वेदोंमें मिलने चाहिये थे न कि ऋग्वेदके, क्यों कि अथर्ववेदका प्रथम प्रवक्ता अथर्वा है । प्रवक्ताका विस्तृत निरूपण हम चतुर्थ अध्याय में करेंगे ।

यहां इतना कथन ही पर्य्याप्त है कि चारों संहिता सदा से इसी रूपमें चली आई हैं । इनमें एक मात्रा की भी त्रुटि नहीं यह आर्य्य मात्र का मन्तव्य है ।

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धायां वेदमर्य्यादायां
तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।
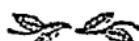
प्रवक्तायोंके भेदोंसे जो संहितामें चारभाग माने गए हैं अब इस कल्पना का खण्डन चतुर्थाध्यायमें करते हैं। प्रवक्ताके अर्थ भी इनके मतमें समय २ पर रंग बदलते रहते हैं। वेदसर्वस्व, पृ० ३७ पर जहां प्रवक्ताके भेदसे संहितायोंका नाम शाखा माना है, वहां वेदके प्रवक्तायोंको केवल प्रवचनकर्त्ता, माना है कि, शाकल संहिता, वाष्कल संहिता, इत्यादि नाम प्रवचन अर्थात् पढानेके कारणसे हुए हैं बनानेके कारणसे नहीं।

और वेदसर्वस्वके, पृ० ६२ पर अथर्वा ऋषिको अर्थवेदका प्रवक्ता माना है। यहां प्रवक्ताके अर्थ प्रकाशकके कीए हैं, कि ईश्वरने अथर्वा को जो ज्ञान दिया था, उसका प्रकाश प्रथम आदिगुरु अथर्वाने किया। और स्मरण रहे कि यहां अथर्व वेदका प्रवक्ता अंगिरस ऋषि नहीं, इस बातका बलपूर्वक मण्डन किया है। प्रवक्ताके अर्थ कहीं स्वयं रचनेवाला, कहीं केवल पढानेवाला, कहीं ईश्वरसे अथर्वाके समान सीधा वेदरूपी ज्ञान उपलब्ध करनेवाला एवं कई एक अर्थ कीए गए हैं, इससे यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि शाकलादि ऋषि जब वेदोंके प्रवचनके कारण अर्थात् पढानेके कारण प्रवक्ता बने तो फिर उन्होने प्रथम वेद किससे पढे। यदि कहा जाय कि स्वयं पढे तो वे अथर्वाके समान आदिगुरु बन गए। और केवल पढानेवाले प्रवक्ता न रहे, यदि किसी अन्यसे पढे तो प्रवक्ता वह पढानेवाला रहा शाकलादि प्रवक्ता न रहे। इस प्रकार संहितायोंके प्रवक्तायोंकी कल्पना सर्वथा मिथ्या है।

दूसरी विवेचनीय बात यहां यह है कि वेदसर्वस्व, पृ० ४० पर यह लिखा है कि संहितायोंके प्रवक्ता शाकलादि ऋषि, व्याससे बहुत पहले हुए हैं इस लिये व्यासने संहितायोंका विभाग नहीं किया, और नाहीं शाकलादि ऋषियोंने संहितायोंका विभाग किया किन्तु संहितायोंका विभाग अथर्वा ऋषिने किया, क्योंकि अथर्वा सबसे प्रथम हुआ है।

पहले तो यह बात इतिहाससे खण्डित हो जाती है कि अथर्वा सबसे प्रथम हुआ, मुण्डक उपनिषद्के वचनसे पाया जाता है अथर्वा भारद्वाज ऋषिसे दो पीढ़ी पहले हुआ है और भारद्वाजको कोई भी आदि सृष्टिमें वर्णन नहीं करता, अस्तु।

अथर्वाके आदिगुरु होनेकी कथा को छोड़कर हम इस बातकी मीमांसा करते हैं कि अथर्वाने चार संहितायोंको किस प्रकार विभक्त किया।

जब वादी स्वयं मानता है कि ईश्वरने अथर्वाको अथर्व संहिता स्वयं दी, तो फिर अन्य संहितायोंका विभाग अथर्वाने कैसे किया? क्योंकि वह तो प्रथम ईश्वरने ही कर दिया जो अथर्वा को बांट कर एक संहिता देदी।

और यदि इस बटवारेका बांटनेवाला अथर्वा होता तो ऋक् संहिता को ही अपने हिस्सेमें क्यों न रखता? जो वादीके मतमें सब संहितायोंका आधार है। अन्य यह तर्क भी इस बातका खण्डन करता है जब एक संहिता ईश्वरने स्वयं विभक्त करके अथर्वा को देदी तो अन्य तीनों का प्रदाता भी ईश्वर स्वयं होना चाहिए जीव नहीं।

सार यह है कि संहिताविभाग व्यासने किया यह विचार पौराणिक है, एवं अथर्वाने एक वेदसंहिताको चार भागोंमें बांट दिया यह विचार उससे भी भद्दा है और सर्वथा युक्तिशून्य है क्योंकि जब अथर्वा को ईश्वरने अथर्व वेद दे दिया तो फिर अथर्वा विचारेमें

क्या सामर्थ्य ? कि वह चार प्रकारसे संहितायोंका विभाग करता ? यह नया मनोघडन्तवाद वादीने इस लिये घड़ा है कि अथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह मु० १ । १ । १ ।

इस मुण्डक वाक्यमें अथर्वा को ईश्वर का पुत्र लिखा है और इसीके समान वादी अपने आपको भी ईश्वरका पुत्र मानता है, प्रमाण के लिये देखो मनसा परिक्रमा मन्त्रोंका भाष्य, पृ० ३ लिखा है कि उच्च कोटिके विद्वान ईश्वरके पुत्र होते हैं और अपने आपको स्वयं आचार्य्य लिख कर उच्च कोटिका विद्वान सिद्ध किया है इत्यादि कल्पनायोंसे तो यही सिद्ध होता है कि वादी अपने आप ही चारों वेदोंका विभाग करनेवाला और वेद छांटनेवाला बन कर आदिगुरु अथर्वासे भी आगे बढना चाहता है ।

और जो यह लिखा है कि एक हज़ार शाखा सामवेद की और एक सौ एक यजुर्वेद की और इक्कीस ऋग्वेद की और नौ अथर्व वेद की इस प्रकार सब शाखा ११३१ बनती हैं । और स्वामी दयानन्दने ११२७ लिखा है यह स्वामी दयानन्दका मत सर्वथा त्याज्य और प्रमाणशून्य है । इसका उत्तर यह है कि महर्षि स्वामी दयानन्द जीने चारों संहितायोंको निकाल कर अन्योंमें शाखा शब्दका प्रयोग किया है यदि ११३१ मेंसे चार निकाल लें तो शेष ११२७ रह जाती हैं ।

और जो यह कहा गया कि इसका कोई उपष्टम्भक प्रमाण नहीं इसका उत्तर यह है कि क्या पतञ्जलि मुनिसे बढकर किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता है कदापि नहीं । यदि यह कहा जाय कि पतञ्जलि मुनिने स्वभाष्यमें संहितायोंको भी शाखा कहा है तो उत्तर यह है कि सहस्र वर्त्मा सामवेदः एक शत मध्वर्य्युः शाखा इत्यादि प्रमाणोंके यह अर्थ हैं कि एक सहस्र प्रकारका सामवेद है और एक

सौ एक शाखा अर्थात् भागवाला यजुर्वेद है। शाखा शब्दके अर्थ यहां भागके हैं।

यदि वादी यह आशङ्का करे कि शाखाके अर्थ भागके कैसे? तो उत्तर यह है कि शाखाविभाग तो लोकमें प्रसिद्ध ही है पर जब वादी स्वयं शाखाके अर्थ मूलके भी कर लेता है कि मूल संहितायोंका ही नाम शाखा है तो फिर उक्त अर्थमें क्या आपत्ति? तात्पर्य्य यह है कि भाष्यकारका आशय वेदोंके प्रकारभेदमें है और वह संहिता रूपसे चार प्रकारका भेद है इस लिये इस पाठसे प्रथम यह कहा है कि (चत्वारो वेदाः) फिर उनको शाखा रूपसे विभक्त रूपसे वर्णन किया गया तो विभागमात्रमें चारों संहितायोंको भी मिला लिया इस लिये ११३१ कहा यह बात सर्वसम्मत है कि संहिता शाखा नहीं, इस लिये शाखा केवल ११२७ ही ठहरीं, अन्य नहीं।

यदि वादी इस बातको असङ्गत समझे वा प्रमाण शून्य समझे तो स्वयं शुद्ध वेद कैसे सिद्ध करेगा? और शाकल बाष्कलके पञ्जेसे निकाल कर उस वेदको कैसे बतलायेगा जिसके शाकलादि केवल प्रवचनकर्त्ता थे अर्थात् केवल पढानेवाले थे। किन्तु बनानेवाले न थे, तो जिनके पढानेवाले शाकलादि थे वे वेद तो उनसे प्रथम सिद्ध हुए। इस प्रकार वेदों की चार संहिता सर्वथा निर्दोष और शुद्ध सिद्ध हो जाती हैं।

अब केवल प्रश्न यह रह जाता है कि फिर उन चारों संहितायोंका प्रथम प्रकाश किन ऋषियों पर हुआ, इसका उत्तर यह है कि वेदसर्वस्व, पृ० १६ पर वादी स्वयं यह मानता है कि अग्नेः ऋग्वेदः वायोर्यजुर्वेदः, सूर्य्यात् सामवेदः शतपथ ११ । ५ । ८ ।

अग्निके द्वारा ऋग्वेद का प्रकाश हुआ वायु ऋषिके द्वारा यजुर्वेदका प्रकाश हुआ और सूर्य ऋषिके द्वारा सामवेद का प्रकाश

हुआ । "अथर्वाङ्गिरसोमुखम्"—अथर्व १० । ७ । २० । इस वाक्यसे सिद्ध है कि अङ्गिरस ऋषिके द्वारा अथर्व वेदका प्रकाश हुआ । इस प्रकार एक मात्र परमात्मा ही चारों संहिताओंका प्रवक्ता है । मनुष्य नहीं यह सिद्ध हुआ ।

और जो पं० सत्यव्रतका उदाहरण देकर यह दिखाजाया कि ऋषि दयानन्दके शाखायोंको वेद माननेका, पं० सत्यव्रतने उपहास किया है फिर स्वयं, पं० सत्यव्रतका यह समाधान दिखलाया है कि स्यात् स्वामी दयानन्दके किसी शाखातत्त्वानभिज्ञ शिष्यने यह लिख दिया हो । इस पर यह लिखा है कि इस समाधानको चाहे कोई अदूरदर्शी समाधान समझे, वस्तुतः यह भी उपहास है । इस प्रसङ्गमें यह लिखा है कि मैंने बहुत चाहा कि स्वामी दयानन्दके मतानुसार ११२७ शाखा जो वेदों का व्याख्यानरूप मानी हैं उनका समाधान करूं पर हो नहीं सकता । क्योंकि यह मत अत्यन्त निर्बल है ।

वादी का तात्पर्य यह है कि शाखा ११३१ हैं और शाखायोंको छोड कर संहिता कोई ग्रन्थ नहीं । यह लेख पूर्वोत्तर विरुद्ध होनेसे चिन्तनीय है क्योंकि पूर्व उपोद्घातमें वादी यह लिख आया है कि शाखाएं संहितायोंसे सहस्रों वर्ष पीछे बनी, और यहां कह दिया कि संहिता ग्रन्थ ही कोई नहीं, शाखा का नाम ही संहिता है ।

इतना ही नहीं, मालूम होता है कि वादी को आचार्य्यपनके मादक द्रव्यने सर्वथा शिथिल कर दिया । अन्यथा क्या कारण कि मनसा परिक्रमाके अर्थ करते हुए पृ० ६ में "ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" ११ । ३ । ५ । इस मन्त्रको अथर्व वेदका मन्त्र लिखा । अब यह पांचवें अङ्गिरो वेदका मन्त्र बनगया क्यों कि यह मन्त्र. का० ११ । ३ । ५ का है और काण्ड ग्यारासे लेकर बीस तक वादी की

सम्मतिमें अङ्गिरस ऋषिने इस वेदको बनाया है, जो ऋषि खारे पानीसे उत्पन्न हुआ था। जिसके मतमें एक वर्षके भीतर ही वेदके १० काण्ड प्रक्षिप्त दृष्टि पड़ें उस की दिव्यदृष्टिमें स्वामी दयानन्दका मत निर्बल प्रतीत हो तो क्या आश्चर्य्य की बात? इससे बढ़ कर निन्दनीय काम यह है कि जो समय २ पर अपने आप कहकर अपने कथन को लोकलालसासे मिटाकर आप स्वयं झूठ लिखना व बोलना परमनिन्दनीय है। देखो आपने स्वयं यह लिखा है कि ऋषि दयानन्दके बनाए हुए पुस्तकोंमें बहुत अशुद्धिएं तथा सिद्धान्तविरुद्ध बातें लिखी देखता हूं, जिनका कारण मैं साथके परिडतों की असावधानी समझता हूं हरिप्रशाद ता० ३१ जुलाई, सं १९१० । यह लेख वह है जो देहरादूनसे महात्मा मुन्शीराम जी को लिखा था अब इस मन्तव्य को पलटकर यह लिख दिया कि श्रद्धाजड, विद्याविमुख अज्ञानमत पुरुष ऐसा मानते हैं कि जो स्वामी दयानन्दके ग्रन्थोंमें भूलें हैं वे साथके परिडतों का दोष है। वेदसर्वस्व पृ० ४९। और पहले स्वयं यह लिख आए कि यह सब भूलें साथके परिडतों की हैं, महर्षि दयानन्द की नहीं। और यहां यह भी लिख दिया कि स्वामी दयानन्दके ग्रन्थोंमें प्रमाणविरुद्ध, शास्त्रविरुद्ध, स्वमन्तव्य विरुद्ध बातोंको दूसरों की मिलाई हुई कहना श्रद्धाजडोंका काम है। और पहले आर्य्य पुरुषों को फुसलानेके लिये स्वयं यह लिखते रहे कि महर्षि दयानन्द जी की कोई भूल नहीं, क्या इस प्रकार अन्यथा कहने वा लिखनेवाला पुरुष भी कभी धर्म निर्णयमें नेता बन सकता है? कदापि नहीं। अस्तु।

मुख्य प्रसङ्ग यह है कि चारों वेदसंहिता जिनका ईश्वरने प्रकाश किया है वह चारों ग्रन्थ व्याख्येय हैं और उनके व्याख्यानों का नाम शाखा है।

शाखा ११२७ हैं, और चारों संहिता मिलाकर ११३१ हैं।

इसका प्रमाण हम पीछे पतञ्जली मुनिके भाष्यसे दे आए हैं कि वेद पुस्तकों की गणनाके अभिप्रायसे पतञ्जलि मुनिने चारों संहितायोंको भीतर गिना है। इस लिये ११३१ और महर्षि स्वामी दयानन्द जीने चारों संहितायोंको निकालकर शाखामात्र की गणना की है। इस लिये ११२७ लिखा है इस विषय को हम पूर्वविस्तृत रूपसे वर्णन कर आए हैं।

यहां चारों संहितायोंके प्रकाशका वर्णन करते हुए प्रथम यह दिखलाते हैं कि संहिता किसको कहते हैं, सर्वोपरि सङ्गत सन्दर्भ का नाम संहिता है, और ऐसी संहिता ईश्वरसे भिन्न कोई निर्माण नहीं कर सकता इस लिये मुख्यतया ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, इन्ही चारों का नाम संहिता है।

गौणी वृत्तिसे कहीं २ लोगोंने शाखायोंका नाम भी संहिता रख दिया है जैसे कि ऊहगान संहिता, और गायत्रसंहिता, गेयगान संहिता, शुश्रुतसंहिता तथा चरकसंहिता, इत्यादि नाम ईश्वरीय संहितायोंके आधार पर रख लिये। जिससे अल्पश्रुतोंको यह भ्रम हो जाता है कि वेदों की ऋगादि चारों संहितायोंसे भिन्न अनेक प्रकार की संहिताएं पाई जाती हैं। जिनमें परस्पर पाठभेद है, इस लिये वेदों की असलीयत नष्टभ्रष्ट हो चुकी। ऐसे मिथ्यावादीयोंका हम पूर्व अनेक स्थलोंमे बलपूर्वक खण्डन कर आए हैं, यहां केवल यह दिखलाना है कि आदिकालमें ऋगादि वेद किन किन ऋषियोंको मिले।

वस्तुतः प्रथम ईश्वरसे ही इन चारों वेदोंका आविर्भाव हुआ है इसमें पुष्ट प्रमाण यह है कि "तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" ऋ० १० । ९ । ९ ।

इस प्रमाणसे पाया जाता है कि चारों वेद परमात्मासे प्रगट हुए। परन्तु इनके प्रकाश का प्रकार यह है कि अग्नि ऋषिसे ऋग्वेद,

वायु ऋषिसे यजुर्वेद, आदित्य ऋषिसे सामवेद, इसमें प्रमाण यह है कि "त्रयोवेदा अजायन्त ऋग्वेदः एवाग्नेरजायत यजुर्वेदः वायोः सामवेद आदित्यात्" ऐ० ब्र० २५। ७। शतपथ। ११। ५। ८। में इस प्रकार है कि (त्रयो वेदाऽजायन्त अग्नेः ऋग्वेदः, वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात् सामवेदः) अग्निसे ऋग्वेद, वायुसे यजुर्वेद, और सूर्य्यसे सामवेद, प्रकाशित हुआ।

इसीके आधार पर भगवान् मनुने यह लिखा है कि "अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञ सिध्यर्थं ऋग् यजुः सामलक्षणम्"। मनु० १। २३।

इस प्रकार ऋगादि तीनों वेदोंकी उत्पत्तिका वर्णन अग्नि आदि ऋषियोंके द्वारा वर्णन किया है।

और "सामानि यस्य लोमान्यथर्वांगिरसो मुखम्" अथर्व० १०। ७। २०। इसमें अथर्व वेद की उत्पत्ति आंगिरस ऋषिसे मानी है। इस प्रकार चारों वेदों का प्रकाश अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा इन चारों ऋषियों द्वारा हुआ है इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद्में अग्नि आदि ऋषियोंके द्वारा चारों वेदों की उत्पत्ति मानी है।

सार यह है कि १ वेद, २ ब्राह्मण, ३ उपनिषद, ४ मनु, यह चारों एक स्वरसे यह कहते हैं कि संहितायोंके विभागकर्त्ता ईश्वर हैं और संहितायोंके विभागके प्रवक्ता अग्नि, वायु, आदित्य, आंगिरस यह चारों ऋषि हैं। परन्तु कई एक आधुनिकोंने आजकल एक नया सिद्धान्त घढ़ा है कि चारों संहितायोंका विभाग करनेवाला अथर्वा ऋषि हुआ है। कथनमें तो इस मनोघड़न्तके प्रवक्ता ऐसे वाक्शूर हैं कि अपनी वेदज्ञताके वैभवमें आए हुए यह भी लिख आए हैं कि ११२७ शाखायोंके विषयमें ऋषि दयानन्दके पास कोई अवष्टम्भक प्रमाण नहीं पर यदि इनसे यह पूछा जाय कि अथर्वाने चारों संहितायोंका विभाग किया। इसमें आपके पास

कौनसा अवष्टम्भक प्रमाण है? अधिक क्या, यदि मूलसे भूल ज्यादा माननेवालेसे अर्थात् ७० मन्त्रका सामवेद और उस की भूल-रूप परिशिष्टके ७० मन्त्र। और २० काण्डके स्थानमें दस काण्डका अथर्व वेद फिर उसमें भी भूल इस प्रकार की असम्बद्ध कल्पना करनेवाले कैसे कह सकते हैं कि अथर्वाने चारों संहितायोंका विभाग किया? क्योंकि अग्न्यादि ऋषियोंमें तो ब्राह्मण, उपनिषद, मनु, वेद यह चार प्रमाण हैं पर अथर्वाके संहिताविभागकर्त्ता होनेमें कौन प्रमाण?

और वाष्कल, शाकल, आदि शाखायोंसे सहस्रों वर्ष प्रथम तुम संहितायोंको मान चुके हो तो फिर वेद शाखारूप कैसे? इस विषयको हम पूर्व विस्तार पूर्वक वर्णन कर आए हैं, यहां इतना ही कहते हैं कि जब संहिताओंका विभागकर्त्ता अथर्वा को बनाना था तो कोई प्रमाण भी ढूंड लेना था, निष्प्रमाण कल्पना से क्या लाभ? यहां अन्तमें इस ओर ध्यान दिलाना भी अत्यावश्यक है कि कलकत्ता एशियाटिक सुसायटी की छपी हुई गानसंहिताका उदाहरण देकर जो वादीने इस प्रकार गायत्रीके दो रूप दिखलाकर खण्डन किया है वह अत्यन्त निन्दनीय है—

वास्तवरूप {
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१॥

विकृतरूप {
तत्सवितुर्वरेणियोम् । भार्गो देवस्य धीमाही ।
धियो यो नः प्रचोऽ १२ऽ १२ । हुम् ।
आ २ । दायो आ ३ ४ ५ ॥ १ ॥

निन्दनीय ही नहीं किन्तु सर्वथा मिथ्या है या यों कहो कि धार्मिक चोलेका आकार बनाकर वेदविषय की वञ्चना करना है। हेतु यह कि न आज तक कोई गानसंहिता छपी और न इसमें गायत्री मन्त्रके शुद्धाऽशुद्ध किसीने दो रूप ही लिखे केवल वादीने लोक-वञ्चनाके लिये राईका पहाड़ बना डाला।

वास्तवमें बात यह है कि सायणभाष्य सहित सामसंहिता जो एशि-एटिक सुसायटीमें छपी है उसमें ऊह गान, उह्य गान, गेयगान, भारण्ड-गान, आरण्यगान, महानाम्नं गान इत्यादि अनेक गान उत्तरार्चिक की पूर्त्तिके अन्तमें छपे हैं। इन्हीका नाम वादीने गानसंहिता रख लिया। क्या आज तक किसीने एक मन्त्र की भी संहिता देखी व सुनि है ? जिस को गानसंहिता कहा गया है उसमें केवल गायत्री मन्त्र ही है। टायटल पेज़ का आकार इस प्रकार है—

सामवेदसंहिता

तत्र

अथ उत्तरार्चिक द्वितीय परिशिष्टम्

अथ गायत्रं साम ।

इतना लिखकर केवल गायत्री मन्त्रका गाना लिखा है। नीचे लिखा है।

"समाप्तमिदमुत्तरार्चिक द्वितीय परिशिष्टम् ।"

परिशिष्ट इस को इस अभिप्रायसे लिखा है कि यह सम्पूर्ण संहिता की समाप्तिके अनन्तर लिखा गया है। यदि परिशिष्टके अर्थ यह लिये जांय कि यह वेदबाह्य है तो फिर इस पर संहिता क्यों लिखा ?

यह भी स्मरण रहे कि इसी प्रकार आरण्यगान, महानाम्न्या-र्चिक गान भी है। मालूम होता है कि इस स्थल की भ्रान्तिमें पड़ कर वादीने इन प्रकरणों को वेदबाह्य कह दिया। अस्तु।

एक मात्र गायत्री मन्त्रके गान का नाम यहां संहिता है। मालूम होता है कि गीतिके कारण जो वेद मन्त्रके स्वरूपमें विकृति उत्पन्न हो जाती है इस कारण इस को परिशिष्टमें लिख दिया।

इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि यह परिशिष्ट स्थल संहिताके भेद हैं किन्तु परिणाम यह निकलता है कि यह सब गान सम्बन्धी सामवेदके ग्रन्थ हैं। इसी अभिप्रायसे इस एडीशनके सम्पादकने यहां यह लिखा है कि "अष्टौ गानग्रन्थाः" यह आठ गाने के ग्रन्थ हैं इनमें सामवेदके थोडेसे मन्त्रों का गान है।

जो लोग कहते हैं कि गान का नाम ही सामवेद है वह अत्यन्त भूल करते हैं क्यों कि सामतन्त्रादि गानेके ग्रन्थ सामसंहितासे भिन्न हैं।

इस विषयका अनुसन्धान मैंने स्वयं एशिएटिक सोसायटी कलकत्तामें जा कर किया। वहां जा कर यह भी पता मिला कि कई एक ग्रन्थ इनमें से ओक्सफोर्ड यूनीवर्स्टीमें चले गए उनके प्रतिपाद्य-विषयोंका सारांश मुझे महामहोपाध्याय सी० आइ० ई० श्रीहरप्रसाद जी शास्त्रीने बतलाया जिनका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

सारांश यह मिला कि संहितायोंमें पाठभेद वा परिशिष्ट गन्ध मात्र भी नहीं।

यह सायणभाष्य सहित सामसंहिता जिसके अन्तमें सामगान छपे हुए हैं इसमें आरण्यकाध्याय और महानाम्नी आर्चिक भी पूर्वार्चिकमें छपे हुए हैं फिर इनके छांटनेवाले कैसे कहते हैं कि यह परिशिष्ट हैं।

इसी प्रकार वे पाञ्च मन्त्र भी संहितामें छापे हैं जिन को ७० मन्त्रवाले सामवेदका कर्त्ता परिशिष्ट बतलाता है।

इस संहिता की समाप्तिपर जितने परिशिष्ट गिने हैं वे गान हैं। इन का वर्णन हम पूर्व अनेक स्थलोंमें कर आए हैं। संहिताके किसी प्रकरणके परिशिष्ट होनेका यहां नाम तक नहीं।

प्रकृत यह है कि यह सब शाखायें हैं अन्यथा एक मन्त्रके गान का नाम संहिता कैसे? मालूम होता है इसी प्रकार सामवेद की एक सहस्र शाखा थी इनका वर्णन हम द्वितीयभागके शाखा निरूपणमें करेंगे।

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धायां वेदमर्य्यादायां
चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः।

समाप्तञ्चेदम्, उत्तरार्द्धम् ॥

———*———

ओ३म् ।

वेदमर्य्यादा के द्वितीय भाग की विषय सूची ।

वेदमर्य्यादा के तृतीय भाग की विषय सूची ।